दीदी
फरवरी १९४४
वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति ।)

प्रधान-सम्पादिका

श्रीमती यशोवती तिवारी
कुमारी हरदेवी मलकानी, एम० ए०, बी० टी०

सम्पादिका-समिति

रानी गिरिजादेवी (भदरी)
श्रीमती सत्यवती (स्नातिका), एम० एल० ए०
श्रीमती रत्नकुमारी, एम० ए०
श्रीमती कमला शिवपुरी, बी० ए०, बी० टी०, अलवर
कुमारी निर्मला गुप्ता, हिन्दी-प्रभाकर
प्रबन्ध सम्पादक—श्रीनाथसिंह

पत्र-व्यवहार का पता

प्रेमलता देवी, संचालिका 'दीदी' इलाहाबाद

विषय सूची

फरवरी, सन् १६४४

'दीदी' के नियम

(१) 'दीदी' मासिक पत्रिका है। इसका वार्षिक मूल्य ३) और एक प्रति का।) है।

(२) पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। पत्र-व्यवहार का पता यह है—संचालिका 'दीदी', कटरा, इलाहाबाद।

(३) 'दीदी' हर महीने में पहली तारीख को प्रकाशित हो जाती है। पहली तारीख के आस पास यदि 'दीदी' आपको न मिले तो आपको तुरन्त अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो १५ तारीख के भीतर संचालिका को लिखना चाहिये।

(४) यदि एक दो मास के ही लिये पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिये। यदि साल भर या अधिक काल के लिये पता बदलवाना हो तो उसकी सूचना मय ग्राहक नम्बर के हमें देना चाहिये।

(५) लेख, बदले के पत्र समालोचना के लिये पुस्तकें आदि 'दीदी', कटरा प्रयाग के पते से भेजना चाहिये।

(६) न छप सकने की हालत में सिर्फ वे ही लेख आदि लौटाये जा सकेंगे जिनके लिये साथ में आवश्यक स्टाम्प भी रहेगा।

भारतीय स्त्रियों और कन्याओं की सबसे अच्छी और सबसे सस्ती सचित्र मासिक पत्रिका

बिहार, बीकानेर, जोधपुर, कोटा, ग्वालियर, यू० पी० की सरकारों द्वारा कन्या-शालाओं के लिये स्वीकृत।

वर्ष ५] इलाहाबाद, फरवरी, १९४४ [संख्या २

निराला के प्रति

लेखिका, मिसेज़ सी० कप्तान

चर्चा सुनी तुम्हारी मैंने, नाम निराला काम निराला।
पहले पहल तुम्हारी रचना, देखी जब निकला 'मतवाला'।
तब मैं थी छोटी सी बच्ची, समझ न पाई गान तुम्हारा।
और आज भी समझ न पाती, क्यों करते जन मान तुम्हारा।
सुनती हूँ तुम नकद एक सौ, लेकर छन्द सुनाने जाते।
धन्य तुम्हें जो इस प्रकार, कवि का, कविता का मोल बढ़ाते।
मान चाहते जनता से तुम, लिख कर स्वप्न-लोक की भाषा।
बादल की कब पूर्ण हुई पर, पर्वत सम अड़ने की आशा।
तुम युग का निर्माण करोगे, यह भी एक अचम्भा भारी।
अटपट शब्द जाल ले तुमने, फकत भाव की मछली मारी।
पर इससे क्या? पंडित हो तुम, शब्द-शास्त्र के अद्भुत ज्ञाता।
नाम तुम्हारा अमर रहेगा, भले न आदर पाओ भ्राता।

गीत

लेखक, श्री स्वराज्यप्रसाद त्रिवेदी, बी० ए०

नारी, युग का निर्माण करो।
है आज त्रसित, पद दलित विश्व, निज ममता से कल्याण करो।
मानव खोया सा, लुटा हुआ
नारी की ओर निहार रहा;
आँचल की छाया पाने को
यह प्यासा विश्व पुकार रहा।
तो निज-करुणा की धारा से तुम पतितों का परित्राण करो॥
यह कैसी विकट अनय-वेला
क्यों सुप्त अचेतन हो नारी?
नर हार चुका, है त्रस्त प्राण
अब आज तुम्हारी है बारी।
तो जगदम्बे सी जाग्रत हो दानवता को म्रियमाण करो॥
नारी युग का निर्माण करो॥

आदर्श मातृत्व

लेखिका, कुमारी हरदेवी मलकानी एम० ए० बी० टी० विशारद

भारतीय इतिहास के अमर पन्नों में जो आदर्श चरित्र सहसा हमारी दृष्टि आकर्षित करते हैं और जिनके आगे हमारा मस्तक श्रद्धा और भक्ति से नत हो जाता है, उनमें प्रमुख है लक्ष्मण की माता सुमित्रा।

सरयू के तीर पर बसी हुई अयोध्या-नगरी में आनन्द के बधावे बज रहे है। अयोध्या के घर घर से मधुर संगीत की ध्वनि प्रति ध्वनित हो रही है। श्रीरामचन्द्रजी के राजतिलक का मङ्गल संवाद सुनकर प्रत्येक अयोध्यावासी का हृदय वैसे ही उछल रहा है जैसे पूर्ण चन्द्रमा को पाकर समुद्र में लहरों का वेग बढ़ जाता है। अयोध्या के घर घर में, गली गली में, मार्ग मार्ग में ऐसा जान पड़ता है कि आनन्द की अजस्र वृष्टि हो रही है।

इसी बीच सहसा रस भङ्ग हो जाता है और वे श्रीरामचन्द्र जी के चौदह वर्ष वन जाने का समाचार सुनते है। संगीत थम जाता है उत्साह शिथिल हो जाता है और सारी अयोध्या पर अमूर्त विषाद छा जाता है। लोग पत्थर की भाँति अवाक होकर स्थिर हो जाते हैं और ऐसा जान पड़ता है मानो हरे भरे खेत को पाला मार गया हो।

श्रीरामचन्द्र जी यही समाचार लेकर माता कौशल्या के सम्मुख आते है और वन जाने की आज्ञा मानते हैं। कोमलहृदया माता कौशल्या इस अमङ्गल संवाद को सुन कर ऐसी भयभीत हो जाती हैं और सूख जाती हैं जैसे बिजली की मारी हुई माधवी-लता। वह क्षण भर स्तब्ध रह जाती हैं फिर धैर्य बटोर कर कहती है:—

"जौ केवल पितु आयसु ताता।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौ पितु मातु कहेउ वन जाना।
तौ कानन सत अवध समाना॥
पितु वन देव मातु वन देवी।
खग मृग चरण सरोरुह सेवी॥"
आदि आदि।

धीरे धीरे यह समाचार लक्ष्मण के कानों तक भी पहुँचता है। वे क्रोध से जल उठते हैं और दौड़े दौड़े श्रीरामचन्द्र जी के पास आकर उनके साथ वन जाने का हठ करते हैं। पहले तो रामचन्द्र जी उन्हें अयोध्या में रहने की सीख देते हैं किन्तु लक्ष्मण के अधिक आग्रह पर वे कहते हैं।

माँगहु विदा मातु सन जाई।
आवहु वेगि चलहु वन भाई॥

लक्ष्मण जी सहमे हुए, दौड़े दौड़े माता सुमित्रा के सम्मुख आकर श्रीरामचन्द्र जी के वन जाने का समाचार कहते है और स्वयं संकुचित होकर उनके साथ वन जाने की बात कहने में सकुचाते है। उस समय माता सुमित्रा ने उस व्यथा को पीकर धैर्य धारण करके, समय की गति तथा विधि के विधान को समझ कर कोमल किन्तु ओजस्विनी वाणी में यह कह कर लक्ष्मण को विदा किया कि!—

"तात तुम्हारि मातु वैदेही।
पिता राम सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू।
तहइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू॥
जौ पै सीय राम वन जाहीं।
अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥"

बस! जहाँ राम का निवास है वही अवध है। यदि राम और सीता वन में प्रस्थान करते है तो तुम्हारा अयोध्या में कुछ भी काम नहीं है अर्थात् तुम भी श्रीरामचन्द्र जी के साथ वन जाओ।

उन्होंने यह भी पूछना उचित न समझा कि राम क्यों वन जा रहे हैं। राजा ने ऐसी कठोर आज्ञा क्यों दी है। आदि। बस कहा केवल यही कि यदि राम वन जा रहे हैं तो तुम भी उनके साथ जाओ। तुम्हारा अयोध्या में कोई भी काम नहीं है। इस त्याग में माता की ममता क्षत्राणी के तेज के सम्मुख मृत प्राय होकर विलीन हो गई। जान पड़ता है कि वे राम के महत्व को जानती थीं। राम की सेवा के

फल के परिणाम को भी समझती थीं। इतना ही नहीं, वे यहाँ तक कह डालती है कि अयोध्या वहीं है जहाँ राम का निवास है। दिन वहीं है जहाँ सूर्य का प्रकाश राम हैं।

वे और भी एक पग आगे बढ़ती हैं।—

"गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं।
सेइअहि सकल प्रान की नाईं॥
राम प्रान प्रिय जीवन जी के।
स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहा ते।
सब मानिअहिं राम के नाते॥
अस जिय जानि सङ्ग बनु जाहू।
लेहु तात जग जीवन लाहू॥

यहाँ पर तो माता सुमित्रा का चरित्र हिमालय के उस उच्च शिखर पर पहुँच जाता है जहाँ पर बड़े बड़े तपस्वी, ऋषि मुनि आदि भी नहीं पहुँच सके हैं। वे राम को गुरु, पिता, माता, भाई देवता और स्वामी सबसे अधिक प्रिय और उच्च मानती हैं। वे स्पष्ट शब्दों में लक्ष्मण से कहती हैं कि यद्यपि गुरु, पिता, माता, भाई देवता आदि सबकी सेवा प्राणों से करनी चाहिए किन्तु राम इन सबके प्राण प्यारे हैं। इन सब के जीवन, धन और स्वार्थ रहित मित्र हैं अतः यदि तुम अपने जीवन के होने का फल प्राप्त करना चाहते हो, तो राम के साथ वन जाओ। कौन माता है जो अपने पुत्र को ऐसे कठोर व्रत के लिये उत्साहित करेगी।

यदि कोई साधारण स्त्री होती तो पहले वह सौत के पुत्र का वन जाने का समाचार पाकर आनन्द के समुद्र में हिलोरें लेतीं। दूसरे अपने हृदय के टुकड़े को वन जाने देने से रोकती और इतना ही नहीं अपने रोदन से घर भर में कुहराम मचा देती। पर आदर्श माता सुमित्रा अपना कर्तव्य जानती हैं। उन्हें रोने धोने की चिन्ता कहाँ? वह तो उतावली हो रही हैं लक्ष्मण को राम के साथ वन भेजने को।

वे तो यहाँ तक कह डालती हैं कि—

"पुत्रवती जुवती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुत होई॥
न तरु बाँझि भलि वादि बिआनी।
राम बिमुख सुत ते हित हानी॥"

वही स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्रीरामचन्द्र जी का भक्त हो और यदि ऐसा न हो तो उसका बाँझ होना ही अच्छा है। तुम्हारे ही भाग्य से राम वन को जा रहे हैं। ब्रह्मा ने तुम्हारे ही भाग्य में राम की सेवा लिखी है अतः ऐसा स्वर्ग सुयोग तुम न छोड़ो और उनके साथ वन जाकर उनकी सेवा करो।

वे समझ रही हैं कि लक्ष्मण के मन में कुछ हिचकिचाहट है अतः वे शंका और सङ्कोच को निर्मूल करती हुई कहती हैं।—

"तुम्ह कहुँ वन सब भाँति सुपासू।
सङ्ग पितु मातु राम सिय जासू॥
जेहि न रामु बन लहहिं कलेसू।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥"

अर्थात् तुम्हारे लिए तो वन में सब प्रकार की सुविधा है क्योंकि तुम्हारे साथ सीता सी माता और राम से पिता है अतः तुम वही करना जिससे श्रीरामचन्द्र जी को किसी प्रकार का क्लेश न हो।

माता कौशल्या के मन में तो अपने पुत्र को वन जाने देने में कुछ हिचक भी हुई किन्तु माता सुमित्रा पर्वत शिला के समान अचल होकर अपने सौत के पुत्र राम के साथ अपने प्राणों से प्रिय पुत्र को वन जाने का और राम की निःस्वार्थ सेवा करने का उपदेश देती हैं।

सुमित्रा भारतीय मातृत्व की उज्ज्वल प्रतीक हैं और यह उन्हीं के निर्मल चरित्र का प्रभाव रहा है कि भारतीय इतिहास ऐसी वीर माताओं के चरित्र से भरा पड़ा है जिन्होंने केवल वनवास के लिये ही नहीं अपितु अपने देश, धर्म तथा मान की रक्षा के लिए अपने पुत्रों के माथे पर टीका लगा कर, उन्हें अमरत्व का आशीर्वाद देकर, युद्ध क्षेत्र के लिये विदा कर दिया। फिर एक बार उसी मातृत्व की आवश्यकता आ पड़ी है। देवी सुमित्रा की कथा और वीर मातृत्व की गाथाएँ क्या फिर भारत के सुप्त मातृत्व को जगा सकेंगी?

———

फल के परिणाम को भी समझती थीं। इतना ही नहीं, वे यहाँ तक कह डालती है कि अयोध्या वहीं है जहाँ राम का निवास है। दिन वहीं है जहाँ सूर्य का प्रकाश राम हैं।

वे और भी एक पग आगे बढ़ती हैं।—

"गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं।
सेइअहि सकल प्रान की नाईं॥
राम प्रान प्रिय जीवन जी के।
स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहा ते।
सब मानिअहिं राम के नाते॥
अस जिय जानि सङ्ग बनु जाहू।
लेहु तात जग जीवन लाहू॥

यहाँ पर तो माता सुमित्रा का चरित्र हिमालय के उस उच्च शिखर पर पहुँच जाता है जहाँ पर बड़े बड़े तपस्वी, ऋषि मुनि आदि भी नहीं पहुँच सके हैं। वे राम को गुरु, पिता, माता, भाई देवता और स्वामी सबसे अधिक प्रिय और उच्च मानती हैं। वे स्पष्ट शब्दों में लक्ष्मण से कहती हैं कि यद्यपि गुरु, पिता, माता, भाई देवता आदि सबकी सेवा प्राणों से करनी चाहिए किन्तु राम इन सबके प्राण प्यारे हैं। इन सब के जीवन, धन और स्वार्थ रहित मित्र हैं अतः यदि तुम अपने जीवन के होने का फल प्राप्त करना चाहते हो, तो राम के साथ बन जाओ। कौन माता है जो अपने पुत्र को ऐसे कठोर व्रत के लिये उत्साहित करेगी।

यदि कोई साधारण स्त्री होती तो पहले वह सौत के पुत्र का वन जाने का समाचार पाकर आनन्द के समुद्र में हिलोरें लेती। दूसरे अपने हृदय के टुकड़े को वन जाने देने से रोकती और इतना ही नहीं अपने रोदन से घर भर में कुहराम मचा देती। पर आदर्श माता सुमित्रा अपना कर्त्तव्य जानती हैं। उन्हें रोने धोने की चिन्ता कहाँ? वह तो उतावली हो रही हैं लक्ष्मण को राम के साथ वन भेजने को।

वे तो यहाँ तक कह डालती हैं कि—

"पुत्रवती जुवती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुत होई॥
न तरु बाँझि भलि वादि विआनी।
राम विमुख सुत ते हित हानी॥"

वही स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्रीरामचन्द्र जी का भक्त हो और यदि ऐसा न हो तो उसका बाँझ होना ही अच्छा है। तुम्हारे ही भाग्य से राम वन को जा रहे हैं। ब्रह्मा ने तुम्हारे ही भाग्य में राम की सेवा लिखी है अतः ऐसा स्वर्ग सुयोग तुम न छोड़ो और उनके साथ वन जाकर उनकी सेवा करो।

वे समझ रही हैं कि लक्ष्मण के मन में कुछ हिचकिचाहट है अतः वे शंका और सङ्कोच को निर्मूल करती हुई कहती हैं।—

"तुम्ह कहुँ वन सब भाँति सुपासू।
सङ्ग पितु मातु राम सिय जासू॥
जेहि न रामु वन लहहिं कलेसू।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥"

अर्थात् तुम्हारे लिए तो वन में सब प्रकार की सुविधा है क्योंकि तुम्हारे साथ सीता सी माता और राम से पिता है अतः तुम वही करना जिससे श्रीरामचन्द्र जी को किसी प्रकार का क्लेश न हो।

माता कौशल्या के मन में तो अपने पुत्र को वन जाने देने में कुछ हिचक भी हुई किन्तु माता सुमित्रा पर्वत शिला के समान अचल होकर अपने सौत के पुत्र राम के साथ अपने प्राणों से प्रिय पुत्र को वन जाने का और राम की निःस्वार्थ सेवा करने का उपदेश देती हैं।

सुमित्रा भारतीय मातृत्व की उज्ज्वल प्रतीक हैं और यह उन्हीं के निर्मल चरित्र का प्रभाव रहा है कि भारतीय इतिहास ऐसी वीर माताओं के चरित्र से भरा पड़ा है जिन्होंने केवल वनवास के लिये ही नहीं अपितु अपने देश, धर्म तथा मान की रक्षा के लिए अपने पुत्रों के माथे पर टीका लगा कर, उन्हें अमरत्व का आशीर्वाद देकर, युद्ध क्षेत्र के लिये विदा कर दिया। फिर एक बार उसी मातृत्व की आवश्यकता आ पड़ी है। देवी सुमित्रा की कथा और वीर मातृत्व की गाथाएँ क्या फिर भारत के सुप्त मातृत्व को जगा सकेंगी?

हिन्दी के सर्व श्रेष्ठ कहानी लेखक की एक नई कहानी

नाटक की नायिका

लेखक, श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

[१]

पन्नालाल अपनी मित्र मण्डली में विराजमान थे। वह कह रहे थे—'परसों त्योहार है—देखिये क्या हो।'

'रोना क्या है, कुछ होने वाला है क्या एक ने?' पूछा।

'होने वाला और किसी के लिए न हो, परन्तु हमारे लिए तो हई है।'

'क्या है कुछ मालूम तो हो।' दूसरे ने प्रश्न किया।

'खर्च है। परसों बीस पच्चीस बिलट जायँगें।'

'अरे बस इतनी सी ही बात।'

'यह थोड़ी बात है?'

'तोबा! आप भी निरे चोंच रहे। त्योहार में तो खर्च होता ही है। बड़े भाग्य से त्योहार मिलता है। बहुतों को तो मिलेगा ही नहीं। आज अच्छे भले होंगे, परन्तु परसों तक रामनाम सत्य हो जायगा।'

तीसरा मित्र बोला—'ठीक कहते हो। भाई मैं तो डर गया था कि भगवान जाने क्या हो। भूचाल आवे, हवाई हमला हो या हिन्दू-मुसलिम झगड़ा।'

'हमारे लिए तो उस्ताद भूचाल ही है।'

'क्यों व्यर्थ बकते हो।'

'अरे भाई आप समझते नहीं। यह भयानक मँहगी, आमदनी का यह हाल और ऊपर से बीस-पच्चीस रुपयों का खर्च! हम तो मर मिटेंगे। पहले त्योहार आता था तो खुशी होती थी, उत्साह होता था और अब घबराहट तथा बेचैनी हो जाती है। ऐसा बुरा समय आ गया है।'

'चांदी काट रहे हो इस समय—व्यर्थ की बातें बनाते हो।'

'चांदी काटें या सोना, परन्तु इनकी कंजूसी की आदत नहीं छूट सकती।'

'जी हाँ! हम कंजूस हैं?'

'और कंजूस होते कैसे हैं? त्योहार आ रहा है। हर्ष तथा उल्लास होना चाहिए, आप उलटे झींख रहे हैं।'

'जिस पर पड़ती है वही जानता है—आपको क्या—धन की फिकर न घन की चोट—यह घमघूसर काहे मोट! सो दशा आपकी है।

एक मित्र बोल उठा—'अच्छा हम युक्ती बतायेंगे, पहले यह बताइये किस मद का खर्च अधिक है।'

'मिठाई-विठाई लानी पड़ेगी, बच्चों के कपड़े, खिलौने और सबसे डबल खर्च तो श्रीमतीजी की साड़ी का है।'

'भाई मिठाई तथा बच्चों के खर्च में तो आप किफायत करें नहीं। हाँ श्रीमतीजी की साड़ी में किफायत हो सकती है।'

'किफायत की बात मत कीजिए। किफायत करना तो मैं भी जानता हूँ। कोई ऐसी युक्ती बताइये जो साड़ी की मद ही गायब हो जाय।'

'परन्तु श्रीमतीजी के पास साड़ी न होगी?'

'क्या बात करते हो। साड़ियाँ एक नहीं, आठ दस धरी हैं और बढ़िया बढ़िया, परन्तु स्त्रियों को तो त्योहार पर नई चीज चाहिये। पुरानी चाहे जितनी बढ़िया धरी हो उससे तबीयत नहीं भरती।'

हम लोग चाहे पुराने-धुराने से काम निकाल भी लें परन्तु यह स्त्रियाँ—भगवान बचावे।

'उनको आपसे कोई सहानुभूति नहीं—ऐसा मालूम होता है।'

'क्यों?'

'जिस बात से आपको क्लेश होता है वही बात करती हैं।'

'सहानुभूति तो किसी को भी नहीं है। सब अपने अपने मन की करना चाहते हैं। किसी बात में कोई जरा सी भी रियायत करने के लिए तैयार नहीं। हमीं अपने ऊपर चाहे जितनी किफायत कर लें, मुसीबत उठा लें—बस।'

'बात यह है कि आप तो हैं मक्खीचूस, दूसरे हैं उदार।'

'जी हाँ! यदि वास्तविक तङ्गी देखें तो सहानुभूति भी हो। केवल कंजूसी से किसी को सहानुभूति नहीं हो सकती।'

एक अन्य महाशय बोले—यह बात तो इनकी ठीक है। घर वालों को खर्च के मामले में कोई सहानुभूति नहीं है। हमारे घर का यही हाल है। यह जानते हुए भी कि आजकल कितनी मँहगी है स्त्रियाँ बच्चे सब अच्छे से अच्छा खाना-कपड़ा चाहते हैं। जो कुछ कहो तो मुँह फूल जाता है।'

'यह बोले—चोर के भाई गिरहकट! यह भी एक नम्बर का कंजूस है।'

'खैर! आप ऐसा ही समझिये। आप लोग ही बड़े उदार सही।'

पन्नालाल बोले—'हाँ तो भाई श्यामसुन्दर तुमने तरकीब न बताई।'

'कुछ खिलाने कहो तो बताऊँ।'

'लो और सुनो! तुम खालोगे तो किफायत ही क्या होगी।'

'ओ हो! मैं साड़ी की कीमत भर थोड़े ही चट कर जाऊँगा। अरे अधिक से अधिक रुपया-बारह आने।'

'अच्छा स्वीकार! अरे हाँ! साड़ी में तो पन्द्रह-बीस की ठुकेगी।'

'अच्छा सुनो। आज आप श्रीमती जी से लड़ाई कर लीजिए। कल दिन भर बोल चाल बन्द रहे।'

'अच्छी तरकीब बताई, त्योहार ही का नाश मार दिया।' दूसरा मित्र बोला।

'नहीं! परसों बोल चाल खोल लेंगे।'

'फिर साड़ी नहीं लानी पड़ेगी।'

'परसों का दिन तो टाला जा सकता है। कह देना दुकानें बन्द हैं। या और कोई बहाना कर देना।'

पन्नालाल कुछ क्षण सोच कर बोला—'हाँ यह तरकीब कारगर हो सकती है।'

'लानत है तुम्हारी कंजूसी पर, साड़ी से बचने के लिए पत्नी से लड़ाई करोगे।'

'आपकी बला से। हम लड़ें या मेल करें—आपसे सलाह लेता ही कौन है।'

[२]

उस दिन रात में पन्नालाल भोजन करने बैठे तो दो-चार कौर खाकर बोले—'तुम भोजन क्या बनाती हो, बिलकुल बेगार टालती हो।'

पत्नी घबरा कर बोली—'क्यों क्या बात है?'

'बात है तुम्हारा सिर!'

'अरे! कुछ बताओगे भी। नमक अधिक है, मिर्चें अधिक हैं या मसाला कम-ज्यादा है—कच्चा रह गया है—बात क्या है?'

'मैं क्या जानूँ क्या बात है—इतना जानता हूँ कि भोजन में कोई स्वाद ही नहीं।'

'तब तो यह तुम्हारी जीभ का दोष है—भोजन का कोई दोष नहीं।'

'क्या कहा—मेरी जीभ का दोष है? अच्छी बात है तो यह लो।'

इतना कह कर पन्नालाल पानी पीकर उठ खड़े हुए। पत्नी मुँह ताकती रह गई। पन्नालाल हाथ मुँह धोकर अपने कमरे में आ लेटे। परन्तु बड़ा अफसोस था। भोजन में यथेष्ट स्वाद आ रहा था। बिना पेट भरे भोजन पर से उठ आने के कारण उनका चित्त खिन्न हो रहा था। थोड़ी देर में पत्नी उनके कमरे में आई और बोली—मैंने भोजन खा कर देखा। भोजन में कोई खराबी नहीं थी। तुम आज कहीं से कुछ खा आये हो, भूख मर गई है—इसलिए भोजन स्वाद नहीं लगा।'

अच्छा—'अब यह तोहमत भी लगाओगी। अच्छा मेरे सामने से चली जाओ—बस।'

पत्नी पति को क्रुद्ध देख कर वहाँ से टल गई; परन्तु उसे पति का क्रोध कुछ ठंढा जँचा। वास्तविक बात भी यही थी। पन्नालाल को क्रोध तो था नहीं, केवल क्रुद्ध होने का नाटक कर रहे थे; परन्तु कुशल अभिनेता न होने के कारण उनका क्रोध पिलपिला रहा था। पत्नी के चले जाने पर पन्नालाल मन ही मन प्रसन्न हुए कि युक्ति काम कर रही है। परन्तु साथ ही अपने इस अनुचित व्योहार पर उन्हें क्लेश भी हो रहा था परन्तु रुपये बचाने का लोभ इतना तीव्र था कि इस क्लेश को प्रसन्नता पूर्वक सहन कर रहे थे। उस समय से पत्नी से बोलचाल बन्द हो गई। रात में पत्नी ने भी उनसे बातचीत करने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

दूसरे दिन सवेरे उठे तो मुँह फुलाये हुए! पत्नी का मुख भी भारी था। पत्नी की दृष्टि बचाते हुए नित्य कार्य से निवृत्त हुए; क्योंकि उन्हें भय था कि पत्नी से आँखें चार होने पर

कहीं उनके मुख पर हँसी अथवा मुस्कान न आ जाय जो सारा खेल ही बिगड़ जाय। आज का दिन पार हो जाय तो बाजी मार ली—कल तो त्योहार ही है। यह सोच कर आप बिना कलेवा किये ही घर से निकल पड़े। एक मित्र के यहाँ पहुँच कर बोले—'यार कुछ जलपान कराओ।'

मित्र ने मुस्करा कर पूछा—'जान पड़ता है श्यामसुन्दर वाली तरकीब से काम ले रहे हो।'

'हाँ उस्ताद! लेकिन युक्ती है अच्छी। आज का दिन निकल जाय तो बस पाला मार लिया।

'बड़े निर्दय हो।'

'क्या करें—कभी कभी निर्दय भी बनना पड़ता है। व्यर्थ में साड़ी के पीछे पन्द्रह-बीस बिगड़ जाते। आवश्यकता होती तो मैं अवश्य ला देता। परन्तु बिना आवश्यकता लाते जी दुखता है। स्त्रियाँ यह बात महसूस नहीं करतीं। उन्हें तो बस हुक्म लगाना आता है।'

'अच्छा भाई! जैसा तुम ठीक समझो। परन्तु अब जो कर रहे हो उसे पूरा उतार देना।'

'इसीलिए तो घर से भाग आया। वहाँ रहता तो भण्डा फूटने का डर था।'

मित्र ने उन्हें जलपान कराया। जलपान कराने के पश्चात् पूछा—'क्या खाना भी बनवाऊँ?'

'अरे नहीं खाना तो घर पर बनेगा ही और खाना भी पड़ेगा। बस यहाँ से जाकर जल्दी-जल्दी खाना खाऊँगा और आफिस चल दूँगा। दिन निकल जायगा। आफिस से लौट कर पुनः कहीं निकल जाऊँगा।'

'अच्छा तो शाम को खाना यहीं खाना।'

'अच्छी बात है। चलो काम बन गया। यहाँ से जा कर चुपचाप सो रहूँगा।'

'ठीक है।'

[३]

घर पहुँच कर शीघ्रता पूर्वक स्नान किया। अष्टवर्षीय पुत्र ने आकर कहा—'चाचा खाना तैयार है।'

'अच्छा!' कह कर आपने देवी-देवता मनाये, अपने चित्त में क्रोध पम्प करने का प्रयत्न किया; क्योंकि रसोई में पत्नी से सामना होने पर हँसी या मुस्कुराहट आने का भय था। इस प्रकार खूब तैयार होकर रसोईघर में पहुँचे तो देखा थाली परोसी धरी है, परन्तु पत्नी रसोई में नहीं है। यह देख कर आप बड़े प्रसन्न हुए। समझे कि मानिनी स्वयं ही सामने नहीं आना चाहती। चलो यह और भी अच्छा है। भोजन करने बैठे तो खूब निश्चिन्तता पूर्वक डट कर भोजन किया।

पुत्र से धीमे-स्वर में पूछा—'तेरी चाची क्या कर रही है?'

'जी अच्छा नहीं है, पड़ी हैं।'

पन्नालाल समझ गये कि नाराज़ हुई पड़ी है। चित्त को ठेस लगी; परन्तु यह सोच कर कि कल सब ठीक हो जायगा धैर्य धारण किया। अपने कमरे में आकर आफिस जाने के लिए कपड़े पहनने लगे। कपड़े पहन चुके थे और जूता पहनने के लिए उद्यत ही हुए थे कि पुत्र चिल्लाता हुआ आया और क्रन्दन स्वर में बोला—'चाचा, जल्दी चलो, चाची को न जाने क्या हो गया।'

पन्नालाल इस समय कोई अशुभ-संवाद सुनने के लिए जरा भी प्रस्तुत न थे इस कारण घबरा कर बोले—'क्या हुआ।'

'चाचा! चाचा! जल्दी चलो!'

पन्नालाल घबरा कर नंगे पैरों ही भागे। पत्नी के कमरे में जाकर देखा तो उसे बेहोश पड़ा पाया—हाथ पैर ऐंठ से गये थे। पत्नी का कंधा झकझोर कर बोले—'रज्जू की चाची! रज्जू की चाची!'

परन्तु रज्जू की चाची ने आँखें न खोलीं। उसका दम उखड़ सा रहा था। अब तो पन्नालाल के हाथ-पैर फूल गये। उन्हें सन्देह हुआ कि जान पड़ता है इसने कुछ खा लिया। यह ध्यान आते ही एक दम रो पड़े। उसे पुनः झकझोरते हुए बोले—'अरे मेरी रानी यह तुमने क्या कर डाला। हाय मैं बड़ा नीच हूँ। अरे रजुवा जल्दी दौड़ कर जा डाक्टर को ले आ—दौड़ता हुआ जाना। हाय मैं क्या करूँ। बड़ा गजब हो गया।'

पिता को रोता देख रजुवा भी चीत्कार करके रोने लगा। पन्नालाल उसे डाँट कर बोले—'अबे डाक्टर को ला ससुरे—भों भों करने से काम नहीं चलेगा—जा जल्दी।' मेरे तो हाथ-पैरों में जैसे दम ही नहीं रहा। हाय राम क्या सोचा

था, क्या हो गया। इस ससुरे श्यामसुन्दरा ने यह सब कराया। अबे गया कि नहीं ?'

रजुवा रोता हुआ भागा। इधर पन्नालाल ने पत्नी के मुख पर पानी छिड़का, सिर भिगोया। इतने उपचार से पत्नी ने आँखें खोलीं।'

पन्नालाल को धैर्य हुआ। पत्नी से पूछा—'यह क्या मामला है, कुछ बताओ तो।'

'कुछ नहीं। ऐसे ही जरा चित्त घबरा उठा, जी डूबने सा लगा था—अब ठीक हो रहा है।'

'ओह ओह! जान में जान आई। मैं तो समझा था तुमने कुछ खा लिया।'

'वाह! खाये मेरी बला। ऐसा मुझ पर कौन दुख पड़ा जो मैं कुछ खा लू।'

इसी समय डाक्टर ने परीक्षा करके देखा और कहा—'कोई बात नहीं, गर्मी चढ़ गई होगी। सब ठीक है। मैं दवा भेजता हूँ।'

डाक्टर ने फीस ली और दवा के लिए रज्जू को साथ लेकर चला गया। पत्नी बोली—'दवा काहे को मँगाई! अब जी अच्छा है।'

'क्या हर्ज है दवा भी खा लेना।' बस अब चुपचाप पड़ी रहो—ज्यादा बोलने से गर्मी बढ़ेगी। मैं जा कर अर्जी लिख डालूँ—आज आफिस नहीं जाऊँगा।'

'क्यों नागा करोगे—चले जाओ, अब कोई खटका नहीं है।'

'नहीं, अब आज नहीं जाऊँगा।'

यह कह कर पन्नालाल ने अपने कमरे में आकर अर्जी लिखी। इतने में ही रज्जू दवा लेकर आ गया।

पन्नालाल दवा लेकर पत्नी के कमरे में पहुँचे। देखा तो पत्नी पलङ्ग पर बैठी थी।

'लो दवा पी लो।'

'मैं दवा-अवा नहीं पियूँगी, मेरी तबियत ठीक है।'

'तो क्या हर्ज है—फायदा ही करेगी।'

'अच्छा रख दो—अभी पी लूँगी।'

पन्नालाल दवा रख कर बोले—'जाऊँ कपड़े उतार आऊँ।'

पत्नी बोली—'कल त्योहार है, अभी कुछ नहीं आया। न रज्जू की टोपी आई, न मेरी साड़ी। आज का ही दिन है।'

पन्नालाल जल्दी से बोले—'खूब याद दिलाया, अभी कपड़े न उतारूँ—तुम्हारा चित्त और कुछ ठीक हो जाय तो बाजार चला जाऊँ।'

मेरा चित्त बिलकुल ठीक है।'

यह कह कर पत्नी पलंग से उतरी और रज्जू से बोली—'तूने खा लिया ?'

पन्नालाल बोले—'कहाँ खाया बेचारे ने।'

'चल खाना खा ले। तुम बाजर हो आओ।'

'अच्छा जाता हूँ।'

'साड़ी जरा अच्छी लाना। ऐसी-वैसी न उठा लाना।'

'हाँ! हाँ!' पन्नालाल ने पकड़े गये चोर की भाँति कहा।

पन्नालाल उसी समय जाकर सब सामान खरीद लाये। साड़ी देख कर पत्नी बोली—'कितने की है ?'

'बाइस रुपये की।'

'बहुत दाम खर्च कर दिये, पन्द्रह-सोलह की ठीक रहती।'

'मुझे यही पसन्द आई।'

'खैर, साड़ी अच्छी है। ओफ ओह! इस साड़ी ने कैसे कैसे नाटक रचवाये।'

पन्नालाल कान खड़े करके बोले—'नाटक कैसा ?'

पत्नी गम्भीरता पूर्वक बोली—तुमने भी नाटक रचा, मुझे भी नाटक रचना पड़ा। तुम्हारा नाटक मैं समझ गई, मेरा तुम नहीं समझ पाये। बस केवल इतनी सी बात है और कुछ नहीं।'

पन्नालाल मानो आकाश से गिरे। लड़खड़ाती हुई जिह्वा से बोले—'नाटक! मैंने तो कोई नाटक नहीं रचा।'

'चलो बस रहने दो।'

पन्नालाल को पसीना आ गया। मन ही मन श्यामसुन्दर को गालियाँ देते हुए सोचने लगे—'अच्छी तरकीब बताई बदमाश ने! साड़ी तो लानी ही पड़ी—डाक्टर का खर्च ऊपर से पलेथन में! जरा मिलने तो दो ससुरे को।'

———

दोषी कौन ?

लेखिका, श्रीमती रत्नकुमारी एम० ए०

[वीरेश्वरसिंह डाक्टर के बङ्गले का वाह्य भाग। सामने छोटा सा बाग है जिसके तीन ओर फूल लगे हैं चौथी ओर चहार दीवारी है। बाग के पीछे यानी चहार दीवारी के सामने बरामदा है। बाग और बरामदे के बीच में सड़क है। बरामदे में चार दरवाजे दीख रहे हैं जो पीछे के दो कमरों में खुलते हैं। चारों पर चिक पड़ी है। बरामदे के दोनों सिरों पर दो छोटे कमरे हैं जिनका सामने का भाग बरामदे की चौड़ाई से आगे को निकला है। जहाँ पर बरामदे की चौड़ाई समाप्त होती है उन कोनों पर घनी चमेली की बेल उगी है, जो छत तक चढ़ी है। बरामदे की सीढ़ियों पर गमले रक्खे हैं। बरामदे में दो आराम कुर्सियाँ और दो अन्य कुर्सियाँ रक्खी हैं। गर्मी की ऋतु का प्रातःकाल ! अभी सूर्योदय नहीं हुआ है। एक स्त्री अस्त व्यस्त की दशा में आती है। उसकी गोदी में वस्त्रों में लिपटा हुआ बचा है। एक बार चारों ओर देख कर बरामदे में चढ़ जाती है।]

स्त्री—[आँसू पोछ कर] तुझे कब से लिये फिर रही हूँ मेरे लाल। कितना कड़ा जी करके चली थी कि आज तुझे छोड़ ही दूँगी पर हिम्मत नहीं पड़ती। गोद से उतारते ही छाती फटने सी लगती है। तुझे नहीं छोड़ूगी। नहीं कभी नहीं। (छाती से सटा लेती है) पर न छोड़ू तो करूँ भी क्या। तुझे समाज मेरे पास रहने तो देगा नहीं। मेरे पाप के कारण तेरा सारा जीवन अभिशाप बन जायगा। विधवा ब्राह्मणी की सन्तान आह......अब नहीं सहन होता। (रोती है, थोड़ी देर में एक दम चौंक कर) दिन निकलता आ रहा है, जल्दी करनी चाहिये। कहाँ लिटाऊँ जिससे आते जाते घर वालों की दृष्टि जल्दी ही इस पर पड़ जाय।

[इधर उधर देखती है। फिर दोनों कुर्सियाँ एक में मिला कर रखती है। उस पर बच्चे को धीरे से लिटा देती है। चलना चहती है पर जा नहीं पाती। बच्चे को फिर उठा कर छाती से लगाती है। आँसू रोके नहीं रुकती। रोते रोते कहती है।]

स्त्री—मुझे माफ करना परमात्मा। मैं पापिनी हूँ पर मेरा बच्चा निष्पाप है। इसे देखना। तुम्हारी ही छाया में छोड़ रही हूँ। माँ की ममता इतनी उत्कट क्यों। दस बजे रात को तू मेरी गोद में आया था। सात घण्टे में ही इतना मोह कि तुझे छोड़ना कठिन जान पड़ता है। नहीं-नहीं मैं नहीं छोड़ूँगी। तुझे मैंने अपना रक्त मांस देकर बनाया है मेरे लाल। (कुछ सँभल कर) मैं कैसी पागल हो रही हूँ। मैं माँ हूँ। मुझे बच्चे की हित कामना करनी चाहिये। चाहे हृदय के टुकड़े टुकड़े हो जायँ पर मुझे इसे त्यागना ही होगा। ।

[सहसा अन्दर से आवाज आती है जिससे ज्ञात होता है घर वाले जाग उठे हैं। स्त्री शीघ्रता पूर्वक बच्चे को कुर्सी पर सुला देती है। बच्चे की ओर देखते देखते जैसे अपने को खींच कर सीढ़ी की ओर चलती है।]

स्त्री—चला नहीं जाता बड़ी कमजोरी है। (कुछ सोच कर) न जाने बच्चे को कौन, कब, उठायेगा। कैसे जान पड़ेगा। न हो छिप कर देखूँ।

[इधर उधर छिपने का स्थान देखती है। तभी सिटकनी खोलने का शब्द होता है। स्त्री शीघ्रता पूर्वक चमेली की बेल के पीछे छिप जाती है। कोने वाला द्वार खोल कर एक नौकर आता है। इधर उधर देख कर]

नौकर—कहीं न अखबार न किताब। सोने भी नहीं दिया। सुबह हुई नहीं कि साहब 'अखबार लाओ' कह कर आफत मचा देते हैं। अभी तक आया ही नहीं, क्या ले जाऊँ। (लौटने को उद्यत होता है सहसा फाटक की ओर देख कर) आया, आया। ले तो आया।

[अखबार वाला तेजी से आता है। अखबार निकाल कर नौकर के हाथ में देते देते।]

अखबारवाला—राम राम भैरो भैया। सबेरे सबेरे किसे ढूँड़ रहे हो।

भैरो—राम राम भैया। तुम्हारा अखबार ही तो ढूँढ़ रहा हूँ।

अखबारवाला—काहे।

भैरो—(हाथ हिला कर) राम जाने इसके पढ़ने में ऐसा कौन सा मजा है। आँख खुली और साहब के मन में चटपटी पड़ी। फौरन मिल जाय तो ठीक, नहीं तो जब तक आ न जाय छटपटाते रहेंगे।

अखबारवा०—(हँसता हुआ) ठीक कहा भैरो। तुम्हारे ही नहीं सब साहबों का यही हाल है। अच्छा चलो।

[अखबार वाला चला जाता है। भैरो भीतर जाने को लौटता है। उसी समय कुर्सी की ओर दृष्टि जाती है। उस ओर बढ़ता हुआ।]

भैरो—अरे ई कुर्सी कौन जुटा गया है। एपर धरा क्या है (पास जाकर झुक कर देखता है) अरे बाप रे ई कहाँ से आया। बच्चा है (छूकर) हाँ बच्चा तो है। हे भगवान! जीता है भूत परेत तो है नहीं। साहब से कहूँ।

[झपट कर अन्दर जाता है। स्त्री एक बार बेल में से सिर निकाल कर झाँकती है। बच्चे को शान्त सोता देख कर फिर छिप जाती है। इसी समय नौकर फिर लौट आता है। उसके पीछे पीछे हाथ में झाड़ू लिये दूसरा नौकर भी आता है।]

भैरो—देख रे देख भजना। है न बच्चा, जीता जागता। साहब से कहा तो बिगड़ने लगे। कहें कि तेरा दिमाग खराब हो गया है। बच्चा कहाँ से आया। अब तू ही देख।

भजना—(झुक कर देखता हुआ) हाँ रे है तो। खूब मजे से सोवत है। बाकी है सुन्दर।

भैरो—हाँ रे बड़े घर का है कौनो। पर अब एकर का होई।

भजना—बहू जी से कह।

भैरो—ना भैया। साहब की नाईं बिगड़े लगें तो।

[उसी समय सीढ़ी पर से चढ़ कर एक और नौकर आता है। वे दोनों अपनी धुन में उसे देख नहीं पाते। वह पीछे से पूछता है।]

मनुष्य—क्या है रे भजना। तुम दोनों क्या कर रहे हो।

भजना—अरे महराज जी आ गये। पालागौं पण्डित जी। यह देखो।

महराज—अरे! यह तो बालक है।

भैरो—देखा! बालक ही है न।

महराज—(हँस कर) सुनी भैरो की बात। अरे! और क्या है।

भैरो—क्या जाने महराज जी क्या है। यही बात मैंने साहब से कही तो बोले—'तेरा दिमाग खराब हो गया है।'

महराज—अच्छा! पर भैया बात तो सची है। बच्चा तो है ही। पर अब ई जाय कहाँ।

भैरो—अरे उठाय के सड़क पर धर आओ।

महराज—राम राम। मर जायगा।

भजना—ये भैरवा बड़ा पापी है।

भैरो—(बिगड़ कर) पापी है। तोरे कहे से रे। तू पापी तेरा बाप पापी, तेरा······

भजना—(चिल्ला कर) चुप रह बे। बाप दादा बखाने का रहे दे नहीं तो।

भैरो—नहीं तो का मार डालेगा।

भजना—(क्रुद्ध स्वर से जोर से) और का छोड़ देब।

[भैरो की गरदन पकड़ता है और झाड़ू मारने को तानता है। इसी समय चिक उठा कर कमरे में से गृहस्वामिनी विमला आती है।]

विमला—(कठोर स्वर से) भजना।

[दोनों सकुचा जाते हैं। भजना गरदन छोड़ कर एक दम नीचा सिर कर लेता है। तीनों संभ्रम पूर्वक पीछे सरक जाते हैं।]

विमला—यह गुदड़ी बाज़ार क्यों लगा रक्खा है। इतने दिन नौकरी करते हो गये तमीज ज़रा भी न आई। भले घरों में ऐसा शोरगुल वह भी बाहर। क्या बात थी।

भजना—बहूजी (बच्चे को दिखा कर) यह······ देखें।

[बच्चे को देख कर विमला चौंक पड़ती है। पास जा कर झुक कर देखती है फिर धीरे से मुँह छूती है। बच्चा चौंक पड़ता है। विमला एक दम हाथ हटा लेती है बच्चा पूर्ववत सो जाता है।]

विमला—यह तो जीता जागता बच्चा है। कहाँ से आया रे।

भजना—का जानी बहूजी। हमका तो भैरो दिखाये है।

भैरो—बहूजी हम अखबार लेवे आये रहे तब ई यहीं रहा।

विमला—अच्छा, तुम लोग जाओ। साहब को यहाँ भेज दो।

[तीनों चले जाते हैं। विमला कुर्सी पर झुक कर बच्चे को देखती है। उसका मुख अपूर्व स्निग्धता से भर जाता है। वह कुर्सी की पीठ पर कुहनी टिका कर खड़ी रहती है। वीरेश्वरसिंह का आगमन।]

वीरे०—मुझे क्यों बुलाया है। अखबार भी नहीं पढ़ने दिया।

विमला—इधर देखो।

वीरे०—क्या है (चौंक कर) अरे! यह क्या है।

विमला—नन्हाँ सा बच्चा। कितना सुन्दर है।

वीरे०—बच्चा ही तो है। जीता है।

विमला—हाँ।

वीरे०—बड़ी विचित्र बात है। यह आया कहाँ से।

विमला—कोई रख गया होगा।

वीरे०—(झुंझला कर) रखने को भी यही जगह मिली। एक झंझट और उठ खड़ा हुआ।

विमला—झंझट कैसा।

वीरे०—तुम भी अजब हो। झंझट नहीं तो क्या है। जीता जागता बच्चा यहाँ पड़ा है। पुलिस में खबर करनी पड़ेगी। पाजी कहीं के फिजूल की इन्क्वायरी करके तंग कर डालेंगे पुलिस में न कहें तो इसको करें क्या।

विमला—पुलिस अंत में क्या करेगी।

वीरे०—अनाथालय में दे देगी।

विमला—तुमसे एक बात कहूँ, मानोगे।

वीरे०—कह देखो।

विमला—इसे मुझे ले लेने दो।

वीरे०—(चौंक कर) तुम······तुम क्या करोगी।

विमला—मैं पालूँगी। देखो हम लोगों के सन्तान नहीं है। परमात्मा ने इसे इसीलिये यहाँ पहुँचा दिया है।

वीरे०—(खीझे हुये स्वर से) तुम भी खूब अर्थ लगाती हो। परमात्मा इसे यहाँ पहुँचाने आया था। अरे! कोई लाकर डाल गया है।

विमला—तो यह मैं कब कहती हूँ कि परमात्मा पहुँचाने आया था। आया तो कोई मनुष्य ही। पर प्रेरणा ईश्वर से ही मिली होगी नहीं तो इतना शहर, इतना मुहल्ला छोड़ कर यहीं क्यों छोड़ जाता।

वीरे०—अच्छी बात है। फिर।

विमला—फिर क्या। जो छोड़ गया है उसे कदाचित् इसकी आवश्यकता नहीं है। हम लोगों को है सो हमें मिल रहा है। लें क्यों न?

वीरे०—'हम लोग' क्यों कहती हो। तुम्हें जरूरत होगी मुझे तो नहीं।

विमला—सच कहते हो? तुम्हें सन्तान की आकांक्षा नहीं है? बोलो।

वीरे०—(झेंप कर) हाँ······है क्यों नहीं। पर अपनी सन्तान की, न कि इस तरह के पड़े पड़ाये बच्चों की।

विमला—(कातर स्वर से) पड़ा पड़ाया क्यों कहते हो। इसके भी माता पिता होंगे। अब तुम्हारे द्वार पर आ गया है तो दुत्कारते क्यों हो। अजी तुम्हारे पैर छूती हूँ। इसे मुझे ले लेने दो। सुनते हो।

[वीरेश्वर असमंजस में पड़ जाता है। कुछ उत्तर न देकर बरामदे में चक्कर काटता है। विमला चुपचाप खड़े खड़े देखती है। फिर बालक के मुख को देखती है। सहसा सोते में वह मुस्करा देता है। विमला मुग्ध हो जाती है।]

विमला—देखो! देखो! कितनी मधुर मुस्कान है। (आगे बढ़ कर वीरेश्वर के पैर पकड़ कर) देखो मना न करो। आई हुई विधि न फेरो।

वीरे०—(पैर छुड़ा कर) अरे! उठो उठो। क्या करती हो। घर न हो गया अनाथालय हो गया। तुम्हें बच्चा ही पालना है तो राजू दादा का मोहन क्यों नहीं ले लेतीं वे गरीब हैं। कई बच्चे हैं, आसानी से दे देंगे।

विमला—ओफ तुम जरा भी नहीं समझते। मुझे बच्चा केवल पालना नहीं है, अपना एकदम अपना करके रखना है। मोहन तो बड़ा है, अपनी माँ को जानता है, वह मेरा हो कर रहेगा धनाभाव के कारण माँ दे देंगी परन्तु क्या उस पर से मातृत्व का छाप हटा सकेंगी। दोनों ही अपना माता पुत्र का सम्बन्ध जन्म भर न भूल सकेंगे। फिर मैं कौन रहूँगी, केवल पालिका मात्र। मुझे धाय नहीं होना है। मैं माँ होना चाहती हूँ। यह बालक जब से नेत्र खोलेगा मुझे ही देखेगा। इसकी माता ने इस पर से अपना स्नेहाधिकार हटा

लिया है, यह मुझे ही माता के समान सेवा, ममता, यत्न करते देखेगा और मुझे ही माता मानेगा। तुम मुझे इसे त्याग कर अन्य बालक पालने की सलाह न दो इसे तो परमात्मा ने ही मेरी गोद में डाल दिया है। तुम क्यों हटा लेना चाहते हो।

[विमला के नेत्रों में अश्रु छलछला आते हैं और कंठ रुद्ध हो आता है। वीरेश्वर अत्यन्त आश्चर्य से सब सुनता रहता है। अन्त में विरक्ति पूर्वक कहता है।]

वीरे०—कैसी आफत है। यह सब तो ठीक है। परन्तु तुमने असलियत भी सोची है। यह क्या अच्छा लड़का है। यह जरूर पाप की सन्तान है। नहीं तो यहाँ न पड़ा होता।

विमला—वह सब तुम सोचो। मैं तो यही जानती हूँ यह बालक निष्पाप है। यदि पाप किसी ने किया भी है तो इसके माता पिता ने, इसने नहीं (धीरे से बालक को गोद में उठा कर) देखो इसकी ओर देखो कितनी पवित्र दीप्ति इस मुख पर है। अब मैंने इसे गोद में उठा लिया है यदि अब भी मुझसे छीन लेना चाहते हो तो ले लो।

[बच्चा विघ्न पाकर जाग उठता है। जरा सा हाथ पैर हिला कर क्षीण स्वर से रोना आरम्भ करता है। विमला हिला झुला कर चुप करने की चेष्टा करती है। बच्चा चुप नहीं होता। विमला उसे हिलाते हिलाते कहती है।]

विमला—बोलो क्या कहते हो।

[विमला के याचना भरे नेत्रों की ओर देख कर वीरेश्वर हिचकता है। फिर कहता है]

वीरे०—अच्छा मुझे सोच लेने दो।

विमला—अच्छा तुम सोच लो। मैं तब तक इसे दूध पिला लाऊँ। यह भूखा है।

[बच्चे को लेकर चली जाती है। वीरेश्वर 'सुनो तो' कहता हुआ चिक उठा कर अन्दर जाता है। विमला रुकती नहीं। वीरेश्वर दरवाजे पर ही खड़ा रह जाता है। स्त्री उसे गया जान कर बाहर निकलती है। बरामदे के सामने आकर ठिठक जाती है क्योंकि इसी समय वीरेश्वर बाहर निकल आता है। स्त्री शीघ्रता से चली जाना चाहती है पर शिथिलता के कारण ऐसा नहीं कर पाती। वीरेश्वर उसकी ओर बढ़ता है, वह पीठ फेर लेती है।]

वीरे०—कौन हो तुम ? इधर देखो।

[वह चुप रहती है। वीरेश्वर दो छलांग में उसके पास पहुँच जाता है और सामने खड़े हो कर उसकी ओर देखते ही चौंक कर दो पग पीछे हट जाता है।]

वीरे०—कौन तुम। नर्स मिश्रा, सरोजिनी।......तुम यहाँ कैसे।

सरोज—(दोनों हाथों से मुँह ढाँक लेती है) हाँ मैं ही हूँ। पर......पर यदि मैं जानती यह तुम्हारा घर है तो न आती।

वीरे०—क्यों मेरे घर ने क्या बिगाड़ा है।

सरोज—कुछ नहीं ओफ ! कुछ नहीं परन्तु फिर भी मैं न आती मुझे नहीं आना चाहिये था। जिस बात को न करने के लिये इतने महीनों से चेष्टा कर रही थी वही हो गई। अच्छा मुझे जाने दो रास्ता छोड़ दो। इस भेद को छिपाये ही चली जाऊँ।

वीरे०—(चकित हो कर) कौन सा भेद।

सरोज—(बात छिपाने की चेष्टा करते हुये) भेद कैसा। कोई भेद नहीं है। मुझे जाने दो। कोई देख लेगा। मैं तो छिप कर आई थी वैसे ही चली भी जाती। पर मोह बच्चे (एक दम से मुँह पर हाथ रख कर) नहीं कुछ नहीं। क्या कह डाला। हटो मैं जाती हूँ।

वीरे०—(सामने आकर) सुनो तो। तुम क्या बक गईं। क्या वह बच्चा तुम्हारा है। सच कहना।

सरोज—हाँ......नहीं नहीं कौन सा बच्चा। मैं कुछ नहीं जानती मैं तो यों ही आई थी। मैं जाऊँगी।

वीरे०—रहने दो सरोज तुम सत्य को छिपा न सकोगी। कह दो बच्चा तुम्हारा ही है। है न।

सरोज—(रुद्ध कंठ से) ओफ छाती फटी जाती है। हाँ मेरा ही है।

वीरे०—और......

सरोज—(वीरेश्वर की ओर असह्य दृष्टि से देखते हुये) तो सुन लो और...और......तुम्हारा।

वीरे०—(बड़े जोर से चौंक कर) मेरा।

सरोज—(दीप्त कंठ से) हाँ तुम्हारा। चौंके क्यों क्या स्मरण नहीं है। हम लोगों की अस्पताल में रात की साथ ड्यूटियाँ ? वे प्रेमलाप ! क्या सब भूल गये।

वीरे०—नहीं तो कुछ नहीं भूला। परन्तु तब नहीं सोचा था कि यह होगा। अब·····

सरोज—चिन्ता न करो। मैं तो गई ही तुम्हें समाज में नीचे न घसीटूँगी। अब तो तुम्हारे पुत्र को यहाँ डाल ही चुकी। चाहो तो आश्रय देना।

वीरे०—आश्रय तो मिल ही गया है सरोज। विमला के शीतल अंग से लेकर अन्यत्र पहुँचा देना मुझसे भी न हो सकेगा अन्य की बात क्या कहूँ।

सरोज—अच्छा तो मैं जाऊँ। अब जीवन भर तुमसे भेट न होगी (आँसू गिरने लगते हैं) एक प्रार्थना करती हूँ बच्चे को देखना। उसे मेरी कलंक कथा न बताना। जिससे वह चार भले लोगों में सिर उठा कर चल सके ऐसा ही प्रयत्न करना।

वीरे०—करूँगा सरोजनी। शायद इसी से कुछ प्रायश्चित हो सके। (काँपते स्वर से) तुम भी इस भेद को छिपा रखना। विमला सुनेगी तो शायद उसे दुख हो, बुरा लगे।

सरोज—यह भेद तो तुम भी न जान पाते पर विधाता की इच्छा। अच्छा अब जाने दो।

[वीरेश्वर हट आता है। सरोजिनी प्रणाम करके आँसू गिराती चली जाती है। वीरेश्वर लम्बी साँस लेकर ऊपर चढ़ आता है।]

वीरेश्वर—(आप ही आप) गई चली गई। मेरी वासना उस पवित्र नारी को ले डूबी। मैं कितना कायर हूँ केवल समाज के भय से उसकी अपने शिशु की माँ की कोई व्यवस्था न की।

[नेत्रों में आँसू छलक आते हैं। तभी विमला चिक उठा कर आती है। वीरेश्वर जरा विचलित हो उठता है और फाटक की ओर दबी दृष्टि से देख लेता है।]

विमला—सोच लिया तुमने।

वीरे०—सोच लिया। तुम नहीं मानती तो क्या करूँ।

विमला—(दबी मुस्कान से) तुम्हें जरा भी पसन्द न हो तो मैं मान ही जाऊँगी।

वीरे०—(जरा सा घबरा कर) नहीं नहीं तुम इसकी चिन्ता न करो। तुम रख लो फिर देखा जायगा। (सकुचाता हुआ) देखूँ तो कैसा है यह जो तुम इतनी मुग्ध हो उठी हो।

[विमला गोद के बच्चे को आगे बढ़ा देती है। वीरेश्वर देखने को कुछ झुक जाता है। बच्चे को देख कर उसके नेत्र छलछला आते हैं।]

विमला—लो न गोदी में। काट नहीं लेगा।

वीरे०—नहीं (भरे कंठ से) नहीं तुम्हीं लिये रहो। अभी बहुत छोटा है। (एकदम घूम कर अन्दर चला जाता है।)

विमला—(शान्त कंठ से) मैंने सब सुन लिया है। तुमने मुझे दुखी न होने देने के लिये भेद छिपा डाला है। परन्तु अपने बच्चे को प्यार करने की तीव्र आकांक्षा जो अभी तुम दबा गये, उससे तुम्हें कितनी पीड़ा हुई है वह मैं जानती हूँ। मुझे दुख क्यों होगा। मैं पत्नी होकर जो न दे सकी वह दूसरे ने दिया तो मैं बुरा मानूँगी? दोषी मैं ही ठहरी। वह नहीं और न तुम। उस बेचारी ने दुख पाया निधि तो मुझे मिली।

(स्नेहपूर्वक बच्चे को चूम कर प्रस्थान।)

विलाप

लेखिका, कुमारी पुष्पलता देवी कुर्रीसुदौली राज

भावों की आशा टूट चुकी।
साथी से अपने छूट चुकी॥
जो बना प्रेम का दीपक था, जलती न दिखेगी उसकी लव।
जीवन रूपी इस सरिता के, उर में होता भारी विप्लव॥
हाला का प्याला घूट चुकी।
भावों की आशा टूट चुकी॥

आहें भर भर रो लेने दो, पुष्पालय में रोता अलि जो।
है मुरझायी लतिका सुन्दर, है सूख चुका जीवन जल जो॥
छलना मुझको कर 'शूट' चुकी।
भावों की आशा टूट चुकी॥

पतियों को एक सीख

आदर्श पत्नी

लेखक, ठाकुर वीरेश्वरसिंह एम० ए०, एल-एल०बी०

पति और पत्नी—हमारे गृहस्थ जीवन के ये दो भुज दंड हैं। आज का पति अपनी पत्नी को जिस रूप में मान्य समझना निश्चित करेगा, कल की सन्तति और कल का समाज उसी के अनुसार उच्च या पतित होगा।

हमारी दादी कैसी थीं, जिनके लड़के हमारे जनक हुए—अर्थात् हम नारी को किस दृष्टिकोण से देखें कि सन्तति तथा मर्य्यादा (अथवा राष्ट्रीयता) की स्वास्थ्य-वृद्धि हो। आज जब हम अपनी माताओं तथा महामाताओं का स्मरण करते हैं तो उनके गुणों की दिव्य ज्योति हमें उल्लसित करती है अथवा उनकी रूप-रेखा?

मन की लालसा का तो कोई उपचार नहीं, किन्तु, हाँ, भले आदमी की तरह कोई विचार करने को तैयार हो तो उसका उपाय है। जिनकी मति मारी गई है, उनको तो इन्द्र की परी मिल जाय, पर मारे-मारे फिरेंगे। किन्तु जिनके आँखें हैं, और अपनी तथा घर की लाज है, जिनके कुछ विचार तथा मर्य्यादा शेष है, वे पायेंगे कि आदर्श पत्नी उनके घर ही में है।

कहते हैं कि एक ऐसे ही थे कोई मन के छैल, अक्ल के बैल। सब पसन्द था; बस अपनी पत्नी पसन्द न थी। वह कानी थी। क्या कहना है फलानी की कमर को। और फलानी की आँखें……! बस, मरे जाते थे कि हाय, भरी बगिया में वे ही 'सुखाय' रहे हैं। घर-गाँव का मामला ठहरा। पनघट पर औरतें आती तो एक टुक हँस के उनसे भी बोल देतीं। इतनी हँसी हमारे नायक-वर के लिए काफी थी। वे मान बैठे कि गाँव भर की कामनियाँ उन पर फिदा हैं। फिर क्यों न तोड़ दी जाय पुरानी जंजीर! जिसे चाहेंगे वर लेंगे!

हुई लड़ाई घर में। और नायक-वर सब छोड़-छाड़ पहुँचे पनघट पर। घर की कानी 'चुड़ैल' उनकी जिन्दगी बरबाद कर रही थी। मार दो गोली उसे। बाहर की परियाँ, जो उन पर सब की सब मोहित हैं, अभी आकर गले में जयमाल डाल कर उन्हें वर लेंगी।

एक आई—दो आई—तीन आई। गाँव भर की कामिनिया आईं। पानी भरा, चल दीं। किसी ने उनसे बात न की। दिन प्रखर हो चला। नायकवर के पेट में कुलबुलाहट जगी, कंठ सूखने लगा। किन्तु ताक में बैठे थे। शाम की उम्मीद बाकी थी! यह कैसे हो सकता है कि कुँवर कन्हैया का खरीदार न मिले!—

दुपहरी ढली, संध्या की बेला आई। कंकन-किंकिनि की मधुर ध्वनि से पनघट फिर गुञ्जरित हो उठा। कल-कंठ से आकाश हर्षित था—छूछे घड़े भर रहे थे। नायकवर भी हरिआये। इधर देखा, उधर देखा। कुछ छेड़-छाड़ का भी सदुपयोग किया। किन्तु विधना विपरीत निकला। प्रणय का उत्तर न मिला।

भूखे-प्यासे, रात गये, घर को लौटे। घर का गरम-गरम खाना पेट में गया तो जी में जी आया। कुछ सुबुद्धि उत्पन्न हुई। बोले—

"का पराई नीकी सूखी, का पराई जोय।
आओ कानी रोटी पोओ, तुम्हें न तूलै कोय॥"

जो मेम साहब के फेर में हैं, वे निनन्यानबे के फेर में हैं। जो आदर्श पत्नी चाहते हैं, उनसे मैं कहूँगा कि वे तुम्हारे घरों में हैं। जो अविवाहित हैं, उन्हें भी आदर्श पत्नियाँ मिलेंगी, यदि भारतीय मर्यादा के अनुसार उन्होंने अपना आचरण रक्खा और वयोवृद्ध-जनों के आशीर्वाद के योग्य उन्होंने अपना विवाह किया। विवाह का प्रश्न बिलकुल टेढ़ा नहीं है, यदि हम अपना दिमाग सीधा कर लें। अँग्रेजी में जिसे 'रोमान्स' कहते हैं, हमारी हिन्दी में वह लम्पटता होगी। हमारा विवाह तो धर्म का विवाह है। हमारी माँ हमें जिस रूप में मिलती है, उसी रूप में वह हमारी पूज्य है। हमारे भाई-बहिन हमारे आदेशानुसार बना कर भगवान हमें नहीं देता, किन्तु वे हमारे प्रिय हैं। पत्नी के विषय में इतनी नुकताचीनी क्यों? इस छूछे तूफान के मूल में लम्पट कामना है। जो भारतीय पद्धति विवाह की है, वह काल-सिद्ध है। इतने बड़े संसार में आदर्श पत्नी जो ढूँढ़ने

निकलेगा, वह स्वयं विलीन हो जावेगा। कुल, तथा मर्यादा के अनुसार जो नारी हमारी पत्नी बनी है, वही आदर्श पत्नी है। विविधता का कोई अन्त नहीं। एक के होकर रहने में ही हमारी सुगति है। विवाह तो धर्म है। इसका पालन करने से ही पालन होता है। लुत्फ को विवाह की कसौटी बनाना भूल है। धर्म का पालन प्रारम्भिक अवस्थाओं में सुखमय न हो सके, तो इतने ही से धर्म त्याज्य नहीं। धैर्य, सुबुद्धि, तथा श्रद्धा से जो धर्म का पालन करेगा उसे ही उसका आनन्द प्राप्त हो सकेगा। विवाह भी इसी प्रकार पालन करने से ही सुखमय होता है। सुखी विवाह ही आदर्श विवाह है, और विवाह को सुखमय करे वही पत्नी आदर्श-पत्नी है। मेरा कहना केवल इतना है कि आदर्श-पत्नी आदर्श-पति की अर्द्धाङ्गिनी को कहते हैं, न कि किसी गुणलावण्य की मंजूषा को। जो आदमी स्वयं ठिकाने का नहीं, उसके लिये स्वर्ग की देवी बेकार है।

आदर्श-पत्नी के प्रश्न पर इस सीमा से आगे बढ़ना युग-युगान्तर के पुरातन तथा बेकार गोरखधन्धे में फँसना है। मन की लगाम के बिना आदर्श-पत्नी कहाँ! मोती तो वही चुगेगा जो हंस होगा। कौवे के लिये, क्या मोती, क्या कंकड़!

पथिक का प्रश्न

लेखिका, श्री रत्नेश कुमारी 'ललन' मैनपुरी

सुमन भूमि पर आज पड़े क्यों, ठुकराये मुरझाये।
देख तुम्हारी दशा हमारे, नयन अश्रु भर लाये॥
तरुवर की गोदी थी, प्रियवर, तुमसे शोभा पाती।
धाय समीरण थी तुमको, पलना सस्नेह झुलाती॥
वर्षा, कृत्रिम क्रोध दशा, धो जाती तब मलिन बदन।
सूर्य रश्मियाँ चूम चूम कर, भर जाती थीं नव जीवन॥
विहंगावलि के मधुर गान, सुनते थे प्रमुदित मन से।
तुम्हीं बता दो क्यों ऊबे, ऐसे सुखमय जीवन से॥
बनूँ किसी का हृदय हार, यह क्यों था मन में आया।
छलनामयी किसी मोहक, छवि ने था क्या भरमाया॥
जिसके हित छोड़े तुमने, निज प्रिय सम्बन्धी सारे।
उससे ठुकराये जाने से, हो हो क्या मन मारे?
उसकी निष्ठुरता का ही, क्या मित्र कर रहे हो चिन्तन।
और धूलि में मिला रहे हो, इससे ही निज कोमल तन॥
मत निराश हो सखे! आश से, भरे रहो नन्हा सा मन।
दलित सुमन बस हेतु, तुम्हारे आशा ही है केवल धन॥

सुमन का उत्तर

लेखक, श्री अरुण

पथिक पूछते हो तुम मुझसे, तू आज पड़ा क्यों मुरझाया।
मित्र! पड़ी इस कोमल तन पर दुसह विरह की छाया॥
मैं पड़ कर सुखमय जीवन में भूला था संसार सभी,
पर ठुकराये जाने पर भी, पूर्वत उर में प्यार अभी॥
ठोकर खाकर के समझा, निष्काम प्यार ही प्यार सखे,
बदले की भावना रही तो, प्यार नहीं व्यापार सखे॥
बना उन्हीं का हृदय हार, बस जीवन का उपयोग यही,
सुख दे पाया पल भर भी, मेरे हित स्वर्ण संयोग यही॥
निज आराध्या के उर से जब मिलन हो गया मेरा,
तब जीवन कृतकृत्य सफल, है अब क्यों करूँ बसेरा॥
अब उनसे ठुकराये जाने की किंचित परवाह नहीं।
सफल साधना है मेरी बस, अब जीवन की चाह नहीं॥
सोचो तुम भी शान्ति चित हो, मत आँसू भर लाओ।
स्वयं जो कि सन्तुष्ट न उसके हित प्रिय हृदय दुखाओ॥
तज दी गोदी तरुवर की, उसका कुछ खेद न मन में।
धाय समीर न दे पायेगी थपकी इस जीवन में॥
जीवन दात्री सूर्य रश्मियाँ, झुलसाती हैं मेरा तन।
सहता सब सानन्द लिये बस, उर में प्रेम महाधन॥

नलिनी

लेखिका, कुमारी गिरिजा कृष्णा भार्गव

[१]

'क्यों नलिनी ! तुम आज घबराई सी क्यों दीख रही हो ?'

'भैया मेरे से न पूछो ।'

'तो किससे पूछूँ नलिनी । बताओ ना क्या हुआ ?'

'लो सुरेन्द्र ! सुनो, तुम्हारी स्नेह-पालिता बहिन अब तुमसे विदा लेने आई है । दोगे भैया खुशी से विदा ।'

'ओह ! मुझे यह मालूम न था । नलिनी ! वह मूर्खा है । उसकी बातों पर ध्यान न दो ।'

'क्या करूँ भैया ! मुझसे भी तो भाई नहीं छोड़ा जाता किन्तु—भाभी का वाक्-प्रहार भी तो अब असहनीय हो उठा—यह कलंक; हा !'

सुरेन्द्र नलिनी के आग्रह को न टाल सका । लाचार हो कर विदा देनी ही पड़ी ।

नलिनी के कमल सम सुन्दर नेत्र अश्रु-प्लावित हो आये । उसने मन्नू का अन्तिम सप्रेम चुम्बन लिया और चल पड़ी ।

सुरेन्द्र चित्रवत् टक-टकी लगाये देखते ही रह गये ।

[२]

नलिनी वास्तव में नलिनी ही थी । उसकी सुशीलता, उसका सौम्य स्वभाव, उसकी गम्भीरता देख कर सभी एक स्वर से कह देते थे कि कभी यह संसार में अपना उच्च आदर्श उपस्थित करेगी । उसका कोकिल कण्ठ सब ही के कर्ण कुहरों में अमृत बरसाया करता था । जब वह गा उठती थी—तब शुष्क हृदय भी लहलहा उठते थे । पर हाय ! उसका यह सुख-स्वप्न विपत्ति के बादलों की भयङ्कर गर्जना ने शीघ्र ही भङ्ग कर दिया । विधाता का प्रकोप इसे ही तो कहते हैं । नलिनी अपने दसवें वर्ष में पैर भी न रख पाई थी कि उसका पिता देवदास और माता नर्मदा प्लेग के कराल मुख में पड़ दो दिन में ही चल बसे । नलिनी सर्व भाँति अनाथ और निरावलम्ब हो गई । उसे उस छोटे से ग्राम में किसी ने शरण न दी और वह भूख प्यास से तड़फ कर एक दिन अनिच्छा होते हुए भी अपनी टूटी-फूटी झोपड़ी छोड़ कर अज्ञात दिशा की ओर निराश्रितों की भाँति चल दी । चलते चलते संध्या हो गई । वह भी निर्जन स्थान में । नलिनी की स्मृति जगी और उसे मालूम हुआ कि मैं घोर जङ्गल में आ गई हूँ । वह भय से व्याकुल हो उठी और नेत्र बन्द कर सिसकते हुए स्वर में ईश्वर प्रार्थना करने लगी ।

माँ के मृदु अञ्चल से बिछुड़ी,
पिता सौख्य से भी वञ्चित ।
चली अनाथ बालिका प्रभु ! यह,
मार्ग न, जिसका है निश्चित ॥
जाऊँ कहाँ, करूँ क्या स्वामिन !
कौन सुने विपदा मेरी ।
मुझको ठौर न और जगत में,
सिवा शरण के प्रभु तेरी !

स्तुति समाप्त कर बालिका ने नेत्र खोले तो अपने सन्मुख एक दिव्यात्मा को खड़ा पाया । जिसके सिर पर गाँधी टोपी और शरीर पर श्वेत खद्दर की कमीज थी । उसके चेहरे से तेज टपक रहा था और नेत्रों से करुणा ।

दिव्यात्मा ने नलिनी के मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा बेटी ! न रो । अरी पगली ! माता पिता से बिछुड़ने का इतना शोक ! यह तो सभी के साथ होता आया है । कोई नई बात नहीं है । देख रानी बेटा अधीर न हो । मैं तेरा पिता ही तो हूँ । आओ चलें, घर चलोगी न ! वहाँ तेरी माँ और एक नन्हा सा भाई होगा । भाई-बहिन साथ साथ खेलना । वह तुझे बहुत प्यार करेगा ।

बालिका प्यारा दुलार पाकर झट उस दिव्यात्मा के साथ होली ।

ये दिव्य तेजोपम पुरुष थे रामपुर गाँव के महेन्द्रप्रसाद । आपके एक पुत्र था और एक धर्मपत्नी । पुत्र का नाम सुरेन्द्र और धर्मपत्नी का नाम था कमला ।

नलिनी ने आमोद-प्रमोद सहित २ वर्ष और व्यतीत कर तेरहवें वर्ष में पदार्पण किया। महेन्द्र को उसके विवाह की चिन्ता हुई। वह नरेन्द्र नामक सुयोग वर को नलिनी सौंप कर पितृ-ऋण से मुक्त हो गये। नलिनी का भी हृदय नरेन्द्र को पाकर परम सुखी था।

दिन बीतते देर नहीं लगती। नलिनी के जाने से महेन्द्र का घर सूना हो गया था। इस कारण महेन्द्र सूने घर की रानी सुरेन्द्र की वधू रमा को ले आये किन्तु उनके भाग्य में सुरेन्द्र की उन्नति और सुख देखना न बदा था। पुत्र वधू के आगमन के कुछ समय पश्चात् ही वह इस असार संसार को त्याग कर जनार्दन के समीप जा पहुँचे। पतिव्रता कमला ने भी पति का अनुसरण किया और पति के पूरे आठ महीने पश्चात् ही वह भी अनन्त ज्योति में लीन हो गई। अब रह गये केवल सुरेन्द्र और उनके दुख सुख की साथिन पत्नी रमा।

संसार का चक्र ही ऐसा है कि सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख जल तरङ्ग की भाँति मनुष्य जीवन में आया ही करते हैं।

सुरेन्द्र आज सर्व भाँति सुखी है। मजिस्ट्रेट है। नौकर चाकर हैं और मन बहलाने को एक छोटा सा पुत्र रत्न मन्नू।

आनन्द से दिन बीत रहे थे। अचानक एक दिन सुरेन्द्र को तार मिला। लिखा था नलिनी का सौभाग्य सर्वदा को लुट गया।

सुरेन्द्र पर वज्रपात हुआ। वह बच्चों की भाँति रो पड़ा। कलकत्ता पहुँचा और देखी नलिनी की बुरी दशा।

[३]

नलिनी सुरेन्द्र के प्रेम पूर्व आग्रह को न टाल सकी और रामपुर को चली आई।

कुछ दिन तो नलिनी के बड़े ही आमोद-प्रमोद में निकल गये। किन्तु अब रमा के हृदय में नाना प्रकार की शङ्कायें उत्पन्न होने लगीं। एक दिन स्वयं उसने आँखों से देखा कि सुरेन्द्र नलिनी के आँसू पोछते हुए कह रहे हैं—'नहीं नहीं मैं तुझे न जाने दूँगा। मैं तुम्हारे वास्ते सब कुछ कर सकता हूँ।'

रमा का रहा सहा सन्देह आज दूर हो गया। वह सहन न कर सकी और गर्ज कर बोली—'भला यह बात, मेरे रहते इतना साहस। अपने पति को तो खा ही लिया। डायन कहीं की? अब मेरे पति को भी लिया चाहती हैं।'

सुरेन्द्र बीच ही में बात काट कर कहने लगे—'यह तुम्हारा कोरा भ्रम है रमा। हम एक माता के गर्भ से पैदा नहीं हुए हैं लेकिन बहिन-भाई का सम्बन्ध है और कुछ न समझो।'

सुरेन्द्र के ये शब्द आग में घी का काम कर गये। देखते देखते रमा ने नलिनी का हाथ पकड़ कर कहा, 'बस इसी में तेरी भलाई है कि आज ही यहाँ से निकल नहीं तो······।'

[४]

सुरेन्द्र का ध्यान आकर्षित करते हुए रमा ने कहा, 'कल बड़ा शुभ दिन, पर्व है। चलो गङ्गा स्नान कर आवें और साथ ही मन्नू का मुण्डन भी करा आवें।

'हाँ हाँ ठीक है।' सुरेन्द्र ने सहर्ष उत्तर दिया।

दोनों प्राणी हरिद्वार पहुँचे और हरि की पैड़ी पर मन्नू का मुण्डन संस्कार कराया गया।

अपार भीड़ थी। इतने ही में एक जोर का धक्का लगा और सुरेन्द्र का सर्वस्व, उनके हाथों का खिलौना देखते-देखते हाथों में से छूट गया और क्षण भर में गङ्गा की लहरों में जा छिपा।

चहुँ दिशि हाहाकार मच गया। किन्तु किसी का साहस न होता था कि अपने प्राणों की बाजी लगा कर उस अगम्य जल-राशि में कूद पड़े।

इतने ही में एक रमणी भीड़ को चीरती हुई आई और देखते देखते जल में कूद पड़ी। पुरुषों के मस्तक नीचे हो गये और स्त्रीत्व गौरव जाग उठा।

कुछ क्षण पश्चात् सभों ने देखा कि वह बच्चे को छाती से चिपटाये ला रही है। धन्य धन्य की ध्वनि से सारा जन-मण्डल गूँज उठा।

सुरेन्द्र पागलों की भाँति चिल्लाते हुए दौड़े। 'दीदी तुम।'

रमा चौंक पड़ी और दौड़ कर नलिनी के चरणों में गिरकर कहने लगी—'मुझे क्षमा करो।'

पत्नी के पत्र

लेखक, श्री बुद्धिसागर वर्मा बी० ए०, एल० टी०, विशारद

[१]

केदारपुर

प्रिय प्राणाधार, सप्रेम नमस्ते। ३०-८-१६१६

उत्तरोत्तर आपके दो पत्र मिले। कई कारणों वश उत्तर देने में विलम्ब हो गया। क्षमा कीजिएगा।

आपके स्वप्न की विलक्षण दशा पढ़ कर चित प्रेम विभोर हो गया। इसमें बुरा मानने की कौन सी बात है। वास्तव में संसार के सारे सुखोपकरण स्वप्न मात्र हैं। श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से अभिमन्यु के विषय में कहा था:—"बन्धन विनश्वर विश्व का है सत्य सुखदाई नहीं।" मेरी समझ में वह जन धन्य हैं जो संसार के मोहों से दूर हैं, किन्तु यह भी तो सोचिए कि यदि संसार के सभी स्त्री-पुरुष सांसारिक कार्यों को छोड़ कर वैराग्य में लिप्त हो जायँ, तो सांसारिक संबंधों को कौन पार करे। कौन किसकी चिन्ता करे, कौन पुरुष स्त्री बच्चों का भरण पोषण करें? अतः संसार में सभी बातें उचित समय पर ही ठीक जँचती हैं। इन सब बातों पर विचार कीजिए और अपने कर्तव्य को न भूलिए। अधिक मैं क्या कहूँ?

संसार में सब विधि हमारे सर्व साधन हो तुम्हीं।
तन हो तुम्हीं, मन हो तुम्हीं, धन हो तुम्हीं, जन हो तुम्हीं॥

आपकी दासी—सुशीला

[२]

केदारपुर

मेरे जीवन सर्वस्व, कोटिशः प्रणाम। १०-६-१६२०

आज तक आपके पत्र की प्रतीक्षा की, किन्तु अभी तक आपने मेरी सुधि न ली। क्या मुझसे अनजान में कोई अपराध तो नहीं हो गया?

लोचन चातक मैं करि राखे। रहहिं सदा जलधर अभिलाखे॥
निदरहि सिंधु सरित गहि वारी। दरश विंदु लहि होउँ सुखारी॥
नाथ, मोहि किंकर करि जानी। समुझि नारि जड़ सहज अयानी॥

दीनबन्धु दयामय परमात्मा से हर समय आपके कल्याण की प्रार्थना किया करती हूँ।

ख्याल आपका दिल में हर घड़ी हर बार रहता है।
कि जैसे जिन्दगी की फिक्र में बीमार रहता है॥

हाँ, यह तो बताइए, चलते समय आप मुझसे क्या कह गए थे। अभी तक आपने अपना वादा पूरा नहीं किया। मैंने भी अवश्य वादा किया था, किन्तु कारणवश मैं पत्र न लिख सकी। देखिए, आप मेरे स्वभाव से परिचित होने पर भी मुझे दुखी करते हैं। मैं अभी आप से कुछ नहीं चाहती, केवल एक मास में दो पत्र।

मेरा अपराध केवल वही रुपये वाला हो सकता है। संसार में मुझे केवल आप ही का सहारा है। फिर भला मैं आपसे ऐसा वर्ताव करके कैसे रह सकती हूँ। आप मेरी ऐसी त्रुटियों पर रुष्ट न हुआ करें। जब तक मैं जीवित हूँ आप ही मेरी सारी आशाओं को पूर्ण करने वाले हैं। अतः जब तक आप नौकर नहीं हैं, तब तक इसी प्रकार निपटाइये।

आप सरीखे देवता तुल्य पति का दिया हुआ विष भी अमृत के समान है। अच्छा, मेरी धरोहर रख लीजिए, फिर ले लूँगी। शेष फिर।

आपकी अयोग्य दासी—सुशीला

[३]

केदारपुर

मेरे जीवनाधार, सप्रेम नमस्ते, २४-१२-१६१६

जिस दिन से आप गए हैं, उसी दिन से आपकी प्रेममयी माधुरी साँवली मूर्ति नेत्रों के चारों ओर घूमा करती है। नाथ! मैं अपनी दशा का कहाँ तक वर्णन करूँ। जागृतावस्था में तो आपके गुणों तथा स्नेह का स्मरण किया करती हूँ। स्वप्न में आपके सुन्दर चन्द्रमुख से प्रेमवार्ता सुना तथा किया करती हूँ। देखें अब कब तक आपके श्री चरणों के दर्शन होगें।

आपने जो छन्द लिखा है, वास्तव में उसका अभिप्राय बहुत सत्य है। संसार में प्रेम बन्धन अत्यन्त कठिन है, किन्तु इसका होना और न होना अपने निजी प्रभाव पर निर्भर हैं।

जो आपने मुझे पत्रों के विषय में शिक्षा दी, वह अत्यन्त लोपयोगी हैं। वास्तव में यह मेरी कमजोरी है। भविष्य में पर अपनी सामर्थ्य भर ऐसा न होने दूँगी।

शिर धरि आयसु करौं तुम्हारा।
परम धर्म यह नाथ हमारा॥

श्रीमान् पूज्य पिता जी ने मुझे 'मानव सन्तति शास्त्र' नामक पुस्तक पारितोषिक रूप में प्रदान की है। पुस्तक बड़ी उपयोगी है। आजकल उसी को पढ़ रही हूँ। "गृहिणी भूषण" आपकी भेजी हुई पुस्तक मिली। कोटिशः धन्यवाद। इसे एक बार समाप्त कर चुकी हूँ।

मैं देखती हूँ आपका स्वभाव अत्यन्त कोमल है। आप शीघ्र दुखी और उद्विग्न हो जाते हैं। वीर और विद्वान पुरुषों का यह धर्म नहीं हैं।

दुख शोक जब जो आ पड़े सो धैर्य पूर्वक सब सहो।
होगी सफलता क्यों नहीं, कर्तव्य पथ पर दृढ़ रहो॥

आप अपने मन में जान लें कि पढ़ने के अतिरिक्त आपके स्त्री तथा कोई कारबार है ही नहीं। ऐसा समझ कर और पढ़ाई में दत्तचित होकर संलग्न हो जाइये और ५-६ मास झेल डालिए। फिर जो कुछ प्रारब्ध में होगा, होता रहेगा। आपका चित दुखी जान कर मुझे अत्यन्त क्लेश होता है। शरीर के आधे भाग में पीड़ा होने पर सारा शरीर दुखता ही है।

आपने लिखा 'मैं परदेशी हूँ', किन्तु मैं आपको परदेशी नहीं समझती, वरन् अपने हृदय में प्रवेश हुआ मानती हूँ। प्रेमनिधे, पत्र भेजने की कृपा इसी प्रकार करते रहिए, क्योंकि मेरी दशा दिनों दिन गिरती जाती है। यदि जीवित रही तो फिर दर्शन करूँगी, नहीं तो वह अन्तिम दर्शन थे। आज-कल मुझसे लिखा तो जाता नहीं, केवल पढ़ा करती हूँ। बड़े दिन की छुट्टी में आप आवेंगे या नहीं?

गाँव घर की स्त्रियाँ कहती हैं ऐसी दशा × में स्त्रियों के दाँत कमजोर हो जाते हैं, अतः मिस्सी लगाने को कहा जाता है। आपकी इस विषय में क्या आज्ञा है?

आप मेरी जरा भी चिन्ता न करें—हाँ पत्रादि से मेरा चित्त शान्त रखिये—मेरे वास्ते इतना बहुत है।

आपकी आज्ञाकारिणी
सुशीला
[क्रमशः]

× गर्भावस्था की ओर संकेत है।

— —

डालमिया प्रकरण

लेखक, श्रीनाथसिंह

सेठ रामकृष्ण डालमिया ने इन पंक्तियों के लेखक को धमकी दी है कि वे मुकदमा चलाने को तैयार हो रहे हैं, उनके सम्बन्ध में सोच समझ कर लिखा जाय। मेरा निवेदन है कि मैं बिना सोचे कभी नहीं लिखता, गलत बात कभी नहीं लिखता और सच बात लिखने के लिए दंड भी भोगना पड़े तो उसे पुरस्कार समझता हूँ।

यह ध्रुव सत्य है कि उन्होंने अपनी ढलती उम्र में एक ही वर्ष के अन्दर दो शादियाँ कीं, जब कि उनकी सती साध्वी एक पत्नी पहले से मौजूद है। यह उन्होंने कोई अच्छा काम नहीं किया।

यह माना कि उनके निजी मामलों में किसी को दखल देने का अधिकार नहीं है। परन्तु तब वे जनता के सामने समाज के नेता और उपदेशक बन कर क्यों आते हैं? अपने घर में क्यों नहीं बैठते? अभी कल की बात है कि रिवाड़ी की एक सभा में उन्होंने घोषणा की कि वे अपने पैरों में घुँघरू बाँध कर अपनी नवपत्नी के साथ भारत के गाँव गाँव में जाकर नाचेंगे और हरिकीर्तन करेंगे? जिसको वास्तव में हरिकीर्तन में तन्मय होना है वह रामकृष्ण परमहंस का मार्ग ग्रहण करेगा, रामकृष्ण डालमिया का नहीं। बुराई बुराई ही है। हरिकीर्तन से उसका परिमार्जन नहीं हो सकता।

हमारे एक मित्र ने कहा है कि सेठ रामकृष्ण डालमिया भगवान कृष्ण के अवतार हैं और श्रीमती सरस्वती देवी जिनके साथ उन्होंने यह शादी की है पूर्व जन्म की गोपी हैं। अतएव इस शादी में दोष नहीं। क्या खूब! विवाह लो-लुपता के लिए भगवान कृष्ण ने अवतार लिया है। हम यह भी जानना चाहते हैं कि पण्डित दुलारेलाल भार्गव किसके अवतार हैं जिन्होंने यह शादी कराई है।

खैर हमारी कन्याओं के सामने गलत आदर्श न आवें, इसलिए यह जरूरी है कि कन्याशालाओं और महिला संस्थाओं में सेठ जी सभापति के आसन पर न बैठाए जाएँ और कन्याएँ उनकी इन नव-परिणीता पत्नी के हाथ से पुरस्कार न लें। ——

शिशु-पालन

अपने प्यारे बच्चे के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आपको कोई चिन्ता हो तो हमारी 'मैट्रन' से पूछें। इन्हें शिशु-पालन का अच्छा अनुभव है और इन्होंने वर्षों एक प्रसिद्ध अस्पताल में यही काम किया है। =)॥ के टिकट के साथ 'मैट्रन' मारफत 'दीदी' इलाहाबाद को बेखटके लिखें।

शिशु के दाँत

प्रश्न—मेरा बच्चा १ वर्ष का है। पर अभी उसके दाँत निकलने शुरू नहीं हुए। बच्चा स्वस्थ है। पर घर वाले चिन्तित हैं। कोई दवा आप बता सकती हैं?

उत्तर—दाँत निकलने में तीन चीजें सहायक होती हैं। चूना, फास्फरस और लोहा। तीनों चीजें औषधि के रूप में अँग्रेजी दवाखानों में मिलती हैं। उदाहरण के लिये 'सिरप हाइपो फास्फेट आफ लाइम' नामक औषधि आप खरीद सकती हैं। यह मीठी होती है। एक एक चाय का चम्मच सुबह शाम दें। परन्तु ये चीजें बच्चों के साधारण भोजन दूध-सब्जी और फलों में भी मिलती हैं और प्राकृतिक इलाज ही उत्तम है। अतएव बहुत चिन्ता न करें। बच्चे को दूध के अलावा थोड़ा सा फलों का रस, कुछ सब्जी का रस दें। दाँत शीघ्र निकल आएँगे।

टाँसिल का इलाज

प्रश्न—मेरा बच्चा मुँह से साँस लेता है, उसकी नाक बराबर बहती रहती है। गला भी सूजा सा जान पड़ता है। डाक्टर कहते हैं कि उसके टाँसिल बढ़ आए हैं। उन्हें आपरेशन करके निकालना होगा? मैं बहुत घबरा रही हूँ। क्या करूँ।

उत्तर—आपके बयान से जान पड़ता है कि बच्चे के टाँसिल बहुत बढ़ गए है और नाक से साँस लेने का रास्ता रुक गया है। इतना ही नहीं, उसके जहर से गले की गिल्टियाँ सूज आई हैं। रोग इतना बढ़ गया है कि आपरेशन के सिवाय किसी और उपाय की ओर मैं संकेत नहीं कर सकती। छोटे बच्चे का टाँसिल का आपरेशन कोई मुश्किल नहीं। बड़ा ही सहज है। आपरेशन के बाद धीरे धीरे बाकी सब शिकायतें दूर हो जायँगी। आप अपने बच्चे को ताजी हवा में जितना वह दौड़ सके, प्रतिदिन दौड़ाया करें। इससे भी टाँसिल में फायदा होता है और वह प्रायः दब जाता है।

मां का दूध

प्रश्न—बच्चे को माँ का दूध कब छुड़ाना चाहिए।

उत्तर—इसके लिए कोई जल्दी करने की जरुरत नहीं। जब तक माँ के स्तनों में दूध हो और वह बच्चे के माफिक पड़े माँ को दूध पिलाना चाहिए। आम तौर पर ८ वें महीने में माँ का दूध छुड़ाया जाता है। पर यह क्रमशः छुड़ाना चाहिए। एकाएक नहीं।

दूध पिलाने वाली माता

प्रश्न—तीन चार महीने के बच्चे को दूध पिलाने वाली माता क्या खाए कि उसका बच्चा तन्दुरुस्त रहे।

उत्तर—मुख्य बात यह है कि दूध पिलाने वाली माता की तन्दुरुस्ती बहुत ठीक रहनी चाहिए। अतएव वह ऐसी चीजें खाए जिससे उसका शरीर स्वास्थ रहे और स्वस्थ शरीर से बच्चे को स्वस्थ दूध मिले। पके स्वादिष्ट फल, हरी पत्ती वाले शाक और दूध का सेवन उसे अवश्य करना जाहिए।

बायाँ हाथ

प्रश्न—मेरा बच्चा सब काम बाएँ हाथ से करता है। मारने पर भी नहीं मानता। क्या करूँ?

उत्तर—यह कोई अनोखी बात नहीं। सौ में तीस व्यक्ति ऐसे होते हैं जो बाएँ हाथ से अधिक काम ले सकते हैं। बच्चे को दाहिने हाथ का प्रयोग भी सिखाओ पर उसे बाएँ हाथ से काम करने दो।

——

विविध विषय

ब्रिटेन की राजकुमारियाँ

जब से वर्तमान युद्ध शुरू हुआ है, ब्रिटेन में कृषि पर बहुत जोर दिया जा रहा है। यहाँ तक कि ब्रिटेन की राजकुमारियाँ भी कृषि कार्य में लग गई हैं। 'विंडसर' कैसिल' नामक राजमहल की सुन्दर पुष्प वाटिका, जिसमें रङ्ग रङ्ग के फूल खिलते थे आज एक खेत में परिणत हो गई है और राजकुमारियाँ अपने हाथ से साग सब्जी बोती हैं।

राजकुमारियों ने जो टमाटर उपजाए हैं उसका उन्हें बड़ा गर्व है। चित्र देखिए।

रोम पर बम वर्षा

अमरीकन हवाई जहाजों ने रोम पर जो भीषण बम वर्षा की थी उसी का यह एक दृश्य है। यह फोटो रेडियो द्वारा भेजा गया था।

ब्लाटिङ्ग पेपर बनाने की रीति

आधी तबेली पानी भर करके गरम रखने के लिये रख दो। जब पानी बहुत गरम हो जावे तो उसमें आधा कप कपड़े धोने का सोडा डाल दो फिर ड्राइङ्ग पेपर के छोटे २ टुकड़े करके डाल दो। १५ मिनट के बाद निकाल लो। धूप में सूखने के लिये रख दो। [illegible] सूख जाय तो ब्लाटिंग पेपर [illegible]।

—प्रेमकुमार कपूर

युद्ध की पोशाक में

ब्रिटेन की युवतियाँ अपने देश के लिए युद्ध कार्य में पूरा हाथ बटा रही हैं। अधिकांश ने स्वेच्छा से खेतों में काम करना स्वीकार किया है। परन्तु वहाँ भी वे युद्ध की पोशाक धारण करना पसन्द करती हैं। यह पोशाक हरे हरे रङ्ग की होती है और हरियाली के बीच अच्छी खिलती है।

यह चित्र एक ब्रिटिश युवती का है जो अपनी नवीनतम युद्ध की पोशाक में हल चला रही है।

चाकलेट बनाने की रीति

आधा सेर ताजा दूध। पाव भर शक्कर। आधा 'कप' शुद्ध शहद। तीनों चीजों को एक बड़ी तवेली में गरम करने रख दीजिए।

जब गाढ़ा हो जावे तो एक साफ बड़ी थाली में डाल दीजिए। उसमें १० बूँद ऐसेन्स डालिये और १ चमच्च घी डालिये। फिर उसके छोटे टुकड़े कर लीजिए। चाकलेट बन कर तैयार हो गई।

नोटः—अगर शहद खराब होगा तो चाकलेट खराब हो जावेगी।

कफ में खून

दिसम्बर मास की "दीदी" में किसी बहन ने (कफ में खून) का इलाज पूछा है। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि बहन क्षय रोग है।

खैर उस बहन के लाभार्थ दो नुस्खे लिख कर भेज रही हूँ। यह दोनों ही अनुभवी डाक्टरों के बताये हुये हैं।

नुस्खे

१—मकड़ी के जो सफेद जाले होते हैं (जो सफेद सफेद मोटे से कपड़े की तरह के होते हैं आम जाले नहीं) इनमें से बहुत सफेद जाले को जो लट्ठे की तरह चमकते हों उन्हें अच्छी तरह उतार कर गुड़ में अच्छी तरह लपेट कर गोली सी बना कर सेवन करें। एक दिन में एक जालें की एक गोली पर्याप्त है। यह औषधि इस बीमारी (यानी तपेदिक) के लिए बहुत लाभदायक है। यह एक अनुभवी अँग्रेज डाक्टर का नुस्खा है। यह ख्याल रहे कि जाला बहुत सफेद हो।

२—थूक में जो खून आता है उसको बन्द करने के लिये बहुत गहरे नीले रङ्ग की बोतल में, स्वच्छ जल भर कर धूप में रख दें। दिन भर की धूप लगने के बाद इस जल का सेवन करे। ऐसा प्रतिदिन करें। इससे भी बहुत लाभ होगा। यह 'रङ्गों के इलाज' की एक ब[illegible] औषध है।

— विमला [illegible]

स्वर्गीय आर० एस० परिडत

लेखक, श्रीनाथसिंह

स्वर्गीय आर० एस० परिडत

श्री रणजीत सीताराम परिडत का स्वर्ग प्रयाण हम सब के लिए एक दुखद घटना है। और एक ऐसे समय में, जब कि परिडत जवाहरलाल नेहरू जेल में हैं और उनकी दो पुत्रियाँ चन्द्रलेखा और नयन तारा हजारों मील दूर अमरीका में हैं, हमारा हृदय इस समाचार से और भी अधिक शोका-तुर हो उठता है। श्रीमती विजयलक्ष्मी परिडत को हम किन शब्दों में धैर्य बँधाए। उन पर दुःख का यह पहाड़ एकाएक टूट पड़ा है। वे आदर्श नारी हैं। उनकी और स्वर्गीय परिडत की जोड़ी देखते ही बनती थी। उनके व्यक्तिगत [illegible]चय का सौभाग्य मुझे प्राप्त था और आज जब मैं ये [illegible] लिख रहा हूँ उनके जीवन के विविध दृश्य चित्रपट की तस्वीरों की भाँति मेरे सामने अंकित हो हो उठते हैं। ये दोनों पति पत्नी देश की सेवा में इतना व्यस्त रहे हैं कि इन्होंने एक दूसरे की और अपनी पुत्रियों की पूर्ण उपेक्षा की है। यह उपेक्षा का भाव कर्तव्य की प्रेरणा से इन्होंने अपने ऊपर लादा था।

मुझे अच्छी तरह स्मरण है, एक बार श्रीमती परिडत ने जब उन्होंने मुझे अपनी एक पुस्तक के प्रकाशन के बारे में सलाह करने के लिए बुलाया था, कहा था—'मुझे खेद है कि मैंने माता के रूप में अपनी पुत्रियों को काफी समय नहीं दिया।' उस समय उनकी सबसे छोटी पुत्री ऋता ६ वर्ष की थी और उसकी ६ वीं वर्ष गाँठ के उपलक्ष्य में भारत की ६ देवियों की कहानी लखी थी। यानी जेल-प्रवासिनी होने के कारण माता को यह अवसर नहीं मिला था कि वह अपनी नन्हीं बच्ची को अपने पास बैठा कर कहानियाँ सुना सके। अतएव उन्होंने ये कहानियाँ लिखी थीं कि उनकी बच्ची उन्हें स्वयं पढ़ लेगी। त्याग की कितनी बड़ी शिला से उन्हों-ने अपने उमड़ते मातृ-हृदय को दबा रक्खा था। आज, जब कि श्रीमान् परिडत साहब इस लोक में नहीं हैं उनका हृदय बार बार यही कह रहा होगा—'मेरे स्वर्गीय स्वामी, मैं तुम्हारी समुचित सेवा नहीं कर सकी।' इसीसे इस बात का कुछ अनुमान किया जा सकता है कि देश की

सेवा में इस दम्पती ने अपने आपको कितना खपा दिया था।

श्री आर० एस० पण्डित तपस्वी देश भक्त तो थे ही उससे भी बढ़ कर वे एक महान लेखक और विद्वान थे। उनका पंडित नाम अक्षरशः सार्थक था। संस्कृत, अँग्रेज जर्मन, फ्रेंच इन भाषाओं में सबसे अधिक वे कौन भाषा जानते थे, इसका अनुमान लगाना कठिन था। उन्होंने कल्हण की राजतंगिणी नामक संस्कृत ग्रंथ का अँग्रेजी भाषा में अनुवाद किया था। जिन दिनों वे यह अनुवाद कर रहे थे मुझे कई बार उनके अध्ययन के कमरे में जाने का अवसर मिला था। वे मूल संस्कृत मन ही मन पढ़ते जाते थे और बोल कर अँग्रेजी अनुवाद अपने स्टीनोग्राफर को लिखा रहे थे। संस्कृत के श्लोक उनके मस्तिष्क में अँग्रेजी भाषा में ढल कर धारा प्रवाह उनकी वाणी से निसृत हो रहे थे। वह एक अद्भुत दृश्य होता था। उनकी अँग्रेजी की शब्दावली बड़े बड़े अँग्रेज लेखकों को मात करती थी।

मेरी प्रार्थना पर 'सरस्वती' के लिए उन्होंने अनेक लेख लिखे थे। एक बार जब वे काश्मीर से लौटे थे, मैंने उनसे काश्मीर की यात्रा पर एक लेख लिखने की प्रार्थना की। मैंने उनसे चित्र भी माँगे थे। उन्होंने कहा—'काश्मीर में लोग जो देखने जाते हैं मैंने उससे सर्वथा भिन्न चीजें देखी हैं और काश्मीर से लोग जैसे चित्र लाते हैं; मैं उनसे भिन्न चित्र भी लाया हूँ।' खैर, उन्होंने लेख लिखा और चित्र भी दिए। वास्तव में वह निराला लेख था। उसमें काश्मीर के सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों का नहीं, काश्मीर के गरीब निवासियों के दिलों में उठती हुई स्वतन्त्रता की दीप शिखा का वर्णन था और चित्र हजारों वर्ष के पुराने खँडहरों और प्रस्तर मूर्तियों के थे जिनसे काश्मीर के प्राचीन राजनैतिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता था। वास्तव में इस दृष्टि से उनसे पहले काश्मीर को किसी ने नहीं देखा था।

मिस्टर पण्डित बहुत बड़े सिद्धान्तवादी पुरुष थे। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण मुझे तब देखने को मिला जब वे इलाहाबाद जिला (जमनापार) से प्रन्तीय एसेम्बली के लिए खड़े हुए। उन्होंने कहा—'मैं इस चुनाव में कम से कम खर्च करना चाहता हूँ।' उन्हें बताया गया कि मुकाबले में राजा डैय्या खड़े हैं और वे पानी की भाँति रुपया बहा रहे हैं।' वे बोले—'मतदाताओं से मैं मिलूँगा। काँग्रेस का पक्ष उनके सामने रक्खूँगा। मैं भले हार जाऊँ पर इससे अधिक और कुछ नहीं करूँगा। रुपये के जरिये या अन्य प्रकार से दबाव डाल कर चुनाव लड़ना मैं सिद्धान्त के विरुद्ध समझता हूँ।' उन्होंने एक तूफानी दौरा किया और विजयी हुए।

वे सहृदय और प्रेमी भी बहुत थे। किसानों से खूब घुल मिल कर बातें करते थे। एक बार जब वे इलाहाबाद जिले में ग्राम सुधार संघ के चेयरमैन थे कुछ ग्रामवासी उनसे मिलने आए। उस गाँव में पण्डित साहब ने एक कुँआ बनवाने के लिए रुपया मंजूर किया था। मैं उस समय उनके पास बैठा था। ग्रामवासियों से उन्होंने पहला सवाल यह किया—'कुएँ की खुदाई शुरू हो गई?' उत्तर मिला—'हाँ!' पण्डित साहब बोले—'अच्छा, जब कुँआ बन कर तैयार हो जाए, मुझे खबर देना। मैं उसका पानी पीने आऊँगा।' वह कुँआ बन कर तैयार हो गया है। परन्तु खेद है कि पहले जेल प्रयासी और फिर स्वर्गप्रयासी होने के कारण वे अपना यह वादा पूरा न कर पाए।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू और वे साले बहनोई थे। परन्तु जब वे साथ साथ चलते थे तब जान पड़ता था जैसे राम लक्ष्मण चले आ रहे हों। पण्डित साहब का काँग्रेस के क्षेत्र में लक्ष्मण का ही पार्ट था। अपना कर्तव्य वे करते थे, यश दूसरों को देते थे। साहित्यकार वे इतने बड़े थे कि शब्दों को जीवित व्यक्ति समझते थे। अपनी पुत्रियों का नाम उन्होंने संस्कृत साहित्य का मंथन करके चन्द्रलेखा, नयनतारा और अमृता स्वयं रक्खा था। अलमोड़ा में उन्होंने जो वृक्षोद्यान लगवाया था उसका नाम ऋतुसंहार रक्खा था।

स्वर्गीय आर० एस० पण्डित वीर पुरुष थे और निश्चय ही वे वीर गति को प्राप्त हुए हैं। उनकी पुत्रियों ने, जो इस समय अमरीका में हैं, माँ को धैर्य बँधाया है। वहाँ से माता के पास केबुलग्राम भेजा है—'मातेश्वरी, धैर्य धारण करो। वे हम सबके रूप में जीवित हैं।' ये शब्द उनकी पुत्रियों के ही अनुरूप हैं।

उनकी मृत्यु से एक महान देश भक्त, एक कुशल नेता, एक श्रेष्ठ विद्वान, एक आदर्श गृहस्थ और एक वीर पुरुष की भारत में कमी हो गई है। श्रीमती विजया लक्ष्मी पण्डित का दुःख आज सारे भारत का दुःख बन बैठा है। यह घाव तो समय के साथ ही भरेगा। हम उनके आदर्श चरित्र के अनुरूप अपने जीवन को परिस्थितियों के साथ पूरा करें यही हमारी उनके प्रति सबसे बड़ी श्रद्धाञ्जली होने पर

क्षत्राणियों के अनमोल बोल

लेखिका, रानी लक्ष्मीकुमारी रावतसर

डिंगल भाषा का काव्य वीर क्षत्राणियों की वर वाणी से पूर्ण है। रानी साहबा ने उसी साहित्य का मंथन करके ये रत्न निकाले हैं।

इला नह देणी आंपणी, रण खेतां भिड़ जाय।
पूत सिखावे पालणो, मरण बड़ाइ मांय ॥१॥

माता पुत्र को झूले में ही शिक्षा देने लग जाती है। अपनी भूमि कदापि न देना रण क्षेत्र में भिड़ जाना। ऐसे धर्म युद्ध में मरने में ही गौरव है।

पंथी एक संदेशड़ो, बाबल ने कहियाह।
जाया थाल न बज्जिया, टामक टहटहियाह ॥२॥

हे पथिक ! एक संदेश मेरे पिता से जाकर कह देना। मेरे जन्म-समय में तो तुमने खुशी में थाली भी न बजाई लेकिन देखो मैं अपने साहस पर नक्कारे इत्यादि बाजे बजवा रही हूँ। अर्थात सती होने जा रही हूँ। लोग मेरी बाजों से अभ्यर्थना कर रहे हैं।

खाग खणद्दे सिर फटे, तन तन माथे रीव।
आला घावां उटसी, धीरो बोल नकीब ॥३॥

खड़ग से मेरे पति का सिर फटा हुआ है। तन पर जगह जगह घावों के टांके लगे हुए हैं। हे नकीब, कृपया जरा धीरे बोल। अन्यथा तेरी आवाज सुन मारे जोश के गीले घावों पर ही उठ खड़ा होगा।

नायण आज न मांड पग, काल सुणीजै जंग।
धारा लागे जै धड़ी, तो दीजै घण रंग ॥४॥

हे नाइन ! आज मेरे पावों को मेंहदी-माहवर से मत रंग। सुना है कल युद्ध होगा। जो मेरे पति वीरता से तलवारों की तीक्ष्ण धारों के आगे खड़े होकर मारे जाय तो फिर मुझे रंग देना।

कठण पयोधर लग्गता, कसमसतो थूं कंत।
सैल घमोड़ा किम सह्या, किम सह्या गज दंत ॥५॥

कठिन पयोधरों के स्पर्श से ही; हे कन्त तुम कसमसाने लग जाते थे। मुझे आश्चर्य तो यह आता है कि उसी सीने पर तुमने भालों के धमाके कैसे सहन किया है। हाथी के मुख की चोट को कैसे झेला ?

कुल थारो रण पोढणो, मोनूं कहती मांय।
प्रणां गाहक पेखियां, कसीयो बरजै काय ॥६॥

माँ, तुम मुझे सदा कहा करती थीं कि 'पुत्र तुम्हारा कुल रण भूमि में सोने वाला है।' अब जब कि मैं इसीलिये कस कर खड़ा हूँ, तुम मेरे—प्राणों के ग्राहकों को खड़े देख कर—अब मुझे क्यों रोकती हो यह तो तुम्हारी ही शिक्षा का फल है।

बंब सुणायो बींद नूं, पैसंता घर पाय।
चंचल सामो चालियो, अंचल बंध छुड़ाय ॥७॥

राजपूत युवक ब्याह कर आया। घर में घुसा ही था कि दुल्हे को रण-भेरी की आवाज सुनाई दी। वह चंचल युवक फौरन नव विवाहिता से अंचल का बंधन छुड़ा, जा युद्ध में शामिल हुआ।

आज घरे सासु कहे, हरख अचानक काय।
बहू बलेवा हुलसे, पूत मरे वा जाय ॥८॥

सास पूछती है, आज यह अचानक घर में किस बात की खुशी मनाई जा रही है ? उत्तर मिला कि तुम्हार पुत्र लड़ाई में मरने के लिए जा रहा है। इसीलिये पुत्रवधू सती होने का सौभाग्य पाने के हर्ष में हुलस कर आनन्द मना रही है।

गोठ गया सब गेहरा, बणी अचानक आय।
सिंहण जाइ सिंहणी, लीधी तेग उठाय ॥९॥

घर के सब पुरुष बाहर दावत में गये हुए थे। अचानक मुसीबत आ पड़ी तो उस सिंहनी ने हाथ में तलवार मुकाबिला करने के लिये उठा ली।

भागे मत सू कंथड़ा, तो भाग्या मुझ खोड़।
मोरी संग सहेल्यडां, ताली दे मुख मोड़ ॥१०॥

पिया, डर कर मत भागना। नहीं तो मुझे शरमिन्दगी देखनी होगी। मेरी सखी सहेलियाँ ताली दे दे मुझ पर हँसेंगी।

रसोंई

भोजन के साथ ज़रूरी चीज—सलाद

सामान—एक छटांक गाजर, एक छटांक मूली, छटांक भर शलजम, एक प्याज, दो टमाटर, हरी धनिया, पोदीना, अदरक, दो मिर्च, करम कल्ले की भीतरी नरम पत्तियां, पालक की मुलायम पतियाँ, पपीता छटाँक भर, नारियल की गिरी आधी छटाँक।

विधि—मूली, गाजर, शलजम, पपीता, नारियल इनको कद्दू कस में कस लें। फिर उसमें प्याज, धनिया, पोदीना, अदरक, मिर्च, टमाटर, करम कल्ले की व पालक की पतियां बारीक कतर दें। उपरान्त उस पर एक नींबू निचोड़ दें और भुना जीरा व नमक मिला कर चम्मच से सब एक कर दें। यह सलाद बहुत गुणकारी और आवश्यक है।

कच्ची सब्जी में प्राकृतिक लवण व विटामिन होता है उनकी शरीर को अत्यन्त आवश्यकता है। सलाद के सेवन से पेट साफ रहता है, अजीर्ण नहीं होता। खाने में रुचि बढ़ती है। अलग अलग तरीके से रोज नया सलाद तैयार किया जा सकता है। उनकी विधि फिर लिखूँगी।

—सुशान्ता कुमारी सिनहा

साबूदाने की खिचड़ी

पाव भर साबूदाना। आध पाव छिली हुई मूँगफली। आलू के कतरे (इच्छानुसार)। हरी मिर्च, हरी धनिया महीन कतरी हुई। एक छोटा चम्मच भर जीरा। एक छोटे चम्मच से कुछ ज्यादा चीनी। नमक अन्दाज से। कच्चे नारियल की खुरचन एक बड़ा चम्मच एक बड़ा चम्मच भर घी।

ऊपर लिखी हुई चीजें संग्रह कर लो। छिली हुई मूँगफली को, चार चार टुकड़े कर लो। आलू के कतरे घी में तल कर रख लो। अब साबूदाने को कुछ देर के लिए पानी में भिगा दो। उसके बाद उसका पानी फेंक कर थाल में फैला कर धूप में रख दो। जब पानी बिलकुल न रहे तब उसमें हरी मिरच, नमक और मूँगफली मिला दो। अब कढ़ाई चढ़ा कर उसमें घी छोड़ दो। घी गर्म हो जाए तो जीरा और एक लाल मिर्च छोड़ दो। जीरा भुन जाए तो साबूदाना छौंक दो। दो एक मिनट चलाने के बाद उसमें चीनी, हरी धनिया, खुरची हुई गरी और आलू के कतरे छोड़ कर, अच्छी तरह मिला कर उतार लो, और दो चार अगारों के ऊपर कुछ देर के लिए रख दो। याद रहे कि चूल्हे के ऊपर साबूदाना अगर ज्यादा देर रहा तो चिपकने लगेगा। यह खिचड़ी खिली हुई रहेगी। यह खाने में बहुत स्वादिष्ट होती है।

—मोहिनी राव

बाल साहित्य

चुटकुला

एक नौकर ने भूल से दवा की जगह स्याही की एक खुराक अपने रोगी मालिक को पिला दी। क्योंकि जिस आले में दवा थी उसी में स्याही की शीशी भी रखी थी। और दोनों का रङ्ग भी कुछ एक सा था। जब उसे यह मालूम हुआ कि उसने दवा की जगह अपने मालिक को स्याही पिला दी है तब तो वह दौड़ा हुआ उसके पास गया और अपना कसूर बतला कर माफी माँगी। मालिक ने उसे खूब फटकारा। नौकर काँपते हुये बोला—'खता माफ होय हजूर। अगर कहें तो तनक सा स्याही सोख लै आई तौन हजूर खाइ लें। जौन स्याही पेट में होई तौन ऊ सोख लेई।'

गायत्री वर्मा, लखनऊ

नई पहेलियाँ

[१]

बीबी ने मियाँ जी को दो पैसे दिये और कहा कि, इन पैसों से माँ के लिये हलुवा, मेरे लिये शरबत, बच्चों के लिये चबेना और बकरी के लिये चारा लाना। बच्चों बताओ कि मियाँ जी उन दो पैसों में ऐसी कौन चीज लाए जो सबके लिये काफी हुई।

उत्तर मियाँ जी तरबूज लाये। गूदा हलुवा, पानी शरबत, बीज चबेना और चारा-छिक्कल हुआ।

—गायत्री वर्मा, लखनऊ

[२]

एक वृद्ध पुरुष तथा एक तरुण स्त्री ऊँट पर बैठे जा रहे थे मार्ग में एक नाई ने पूछा तुम दोनों में परस्पर क्या नाता है ?

वृद्ध बोला—इसका मेरे यहाँ आना जाना एक ही में होती है खेती। इसकी सास मेरी सास हैं माँ बेटी।

उत्तर—ससुर बहू। —प्रेषिका भानुमती

वृत्त होने पर

डालमिया की ढिठाई

लेखक, श्रीनाथसिंह

सेठ रामकृष्ण डालमिया के भ्रष्ट आदर्श का उल्लेख हम 'दीदी' के पिछले अङ्क में कर चुके हैं। और आज हमें इस बात का हर्ष है कि डालमिया जी ने एक वीर पुरुष (?) की तरह उसे पब्लिक में स्पष्ट शब्दों में कबूल ही नहीं किया है, किन्तु उन लोगों के मुँह में खखार खखार करके थूका भी है जो उनको आग्रह पूर्वक बुला कर राजसी ढङ्ग से उनकी आवभगत करते हैं।

डालमियाजी अपनी तीसरी नई दुलहिन को लेकर पवित्र विश्वनाथपुरी काशी पधारे नहीं थे, किन्तु 'सनातनियों' के 'महामण्डल' ने इन दोनों को आर्यमहिला-विद्यालय के जलसे में सभापतित्व करने के लिए आमंत्रित किया था। उस महामण्डल ने, जो बहु-विवाह को तो धर्मसङ्गत मानता है, पर अन्तर्जातीय विवाह करने वाले हिन्दू को पतित समझता है। और ऐसे पतित आदमी को हिन्दुओं को इस फूँक फूँक कर पैर रखने वाली परम पवित्र संस्था ने अपने 'महिलाविद्यालय' के उत्सव में बुलाना क्यों पसन्द किया, इसका भेद श्री डालमियाजी ने वहीं का वहीं खोल दिया है। उन्होंने अपने भाषण में साफ साफ कह दिया है कि "धन के पर्दे में सभी दोष छिप जाता है। जब मैं सात्विक भाव से रहता था तो कोई मुझसे बात भी नहीं पूछता था, पर आज जब कि स्वयं मैं कबूल करता हूँ कि मुझमें कितने दोष आ गये हैं, बड़े बड़े लोग मुझसे मिलने आया करते हैं। ये मुझसे नहीं, अर्थात् मेरे धन से मिलने आते हैं।"

महामण्डल के तपस्वी सूत्रधार भले ही डालमियाजी की इन लताड़ों को उनकी एक हजार रुपया मासिक की सहायता के कारण, पुष्पहार समझें। परन्तु उन्हें उन लड़कियों के अभिभावकों और सनातनी जनता का समाधान करना ही पड़ेगा कि उन्होंने धर्म की दृष्टि से गर्हित इस अनमेल विवाह का आदर्श उक्त विद्यालय में क्यों उपस्थित किया और धर्म की दृष्टि से पतित व्यक्ति को इतना महत्व क्यों दिया। परन्तु [illegible] दल यदि धर्म का आग्रह प्रकार करता ही होता तो आज वह सनातनधर्मियों में इतना उपेक्षित ही क्यों होता। जो संस्था अपने को 'भारत का धर्म महामण्डल' कहती है और जो सनातनधर्म का नेतृत्व करने का दावा करती है वही संस्था अपने लड़कियों के विद्यालय में एक ऐसे व्यक्ति का राजसी सम्मान करती है जिसने अभी अभी उस दिन एक सन्तान और दो पत्नियों के होते हुए भी एक तीसरी नवयुवती के साथ अपनी उतरती उम्र में विवाह किया है, जिसके सम्बन्ध में उसने उसी भाषण में ही कहा है कि 'करोड़पति की पत्नी होने से ही कोई पत्नी सुखी होगी, यह गलत है।'

इस ढीठ करोड़पति के इस शीलहीन भाषण का उस विद्यालय की बालिकाओं पर क्या प्रभाव पड़ा होगा इस पर उसके सञ्चालक चाहे धन के लोभ के कारण विचार न करें, परन्तु जो समाज के रक्षक हैं तथा जो अपने समाज के आगे उच्च आदर्श रखना चाहते हैं उन्हें तो डालमिया के भ्रष्ट आदर्श का विरोध करना ही होगा। और यदि हमारे ये कन्या-विद्यालय डालमिया से इस प्रकार का सम्बन्ध कायम रखना उचित मानेंगे तो उन सञ्चालकों को समझ रखना चाहिये कि जनता उनके इस स्वेच्छाचार का दृढ़ता से विरोध करेगी।

"दीदी" का बङ्गाल सहायता कोष

'दीदी' के बङ्गाल सहायता कोष में अब तक निम्नलिखित धन प्राप्त हुआ है:—

१२६७।-) गताङ्क के अनुसार

१०) श्रीमती केसरबाई जैन लछमनगढ़ी, खैर, अलीगढ़।

१०) श्रीमती कुँवरानी जी साहबा, लखनसर, बीकानेर।

५) श्रीमती सावित्रीदेवी बादिया मारफत श्री बनवारी लाल एण्ड सन्स, बीकानेर।

५) श्रीमती छोटा बाई मारफत श्री सालिगराम लक्ष्मीचन्द नथानी, रायपुर सी० पी०।

२) श्रीमती विद्यावती मिश्रा मारफत पं० सी० बी० अवस्थी, लखनऊ।

१२९९।-) कुल।

अपने विचार

अन्यत्र हम रानी लक्ष्मीकुमारी रावतसर द्वारा संकलित और अनुवादित डींगल के कुछ दोहे प्रकाशित कर रहे हैं। रानी साहबा का जन्म मेवाड़ राज्य के ठिकाना देवगढ़ में चूड़ा के वंश में हुआ है जो मेवाड़ के भीष्म कहलाते हैं और उनका श्वसुरगृह कांधल वंश में है जिनकी तलवार से बीकानेर राज्य का नकशा बना है। उनकी नाड़ियों में राणा सांगा और प्रताप का खून दौड़ता है। अतएव यह कार्य उनके यश के अनुरूप ही है। आशा है आज की बहनें इससे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगी।

× × ×

नारी की पूर्णता उसके मातृ रूप में है। प्राचीन भारत में नारी का यह स्वरूप पूर्ण विकसित था। इसका सबसे अच्छा उदाहरण रामायण में अंकित सुमित्रा का चरित्र है। इस सम्बन्ध में कुमारी हरदेवी मलकानी ने एक बहुत ही सुन्दर लेख लिखा है जो हम इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित है।

× × ×

पंडित विश्वम्भर नाथ वर्मा कौशिक हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक हैं। कथाओं द्वारा पारिवारिक जीवन को सरस बनाना उनका मुख्य ध्येय रहा है। अन्यत्र प्रकाशित उनकी कहानी "नाटक की नायिका" इसका अच्छा उदाहरण है। इस कहानी को आप अवश्य पढ़ें और उनकी अद्भुत लेखनी का चमत्कार देखें।

× × ×

श्रीमती रत्नकुमारी एम० ए० ने इधर एकाङ्की नाटक लिखने शुरू किये हैं। उनका पहला नाटक 'दोषी कौन ?' हम 'दीदी' की पाठिकाओं की भेंट कर रहे हैं। आधुनिक सामाजिक समाजिक समस्याओं को लेकर लिखा गया ऐसा सुन्दर नाटक इससे पहले हमारे देखने में नहीं आया।

× × ×

आदर्श-पत्नी किसे कहें, इस सम्बन्ध में दीदी की एक पाठिका ने प्रश्न पूछा था। उत्तर में हमारे पास बहुत से लेख आए हैं। प्रसिद्ध हिन्दी लेखक और कवि ठाकुर वीरेश्वरसिंह का उत्तर हमें सबसे अधिक पसन्द आया। उसे हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं।

लिपटन की चाय पीते पीते असावधानी से बातें न कीजिये ।

Printed and published by Shrinath Singh at the Didi Press, Katra, Allahabad.